बीता युग नई याद

राष्ट्र और समाज की विभूतियों के
संस्मरण तथा अन्य प्रसंग

•

सीताराम सेकसरिया

•

१९७०
सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मन्त्री, सस्ता साहित्य मडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९७०
मूल्य
पाच रुपये

प्रकाशकीय

'मण्डल' से सस्मरणो के कई सग्रह प्रकाशित हुए है। इन सग्रहो को पाठको ने इतना पसद किया है कि उनके कई-कई सस्करण हुए है। उनकी माग बराबर बनी रहती है।

हमे हर्ष है कि उसी श्रृखला मे एक नई पुस्तक पाठको को उपलब्ध हो रही है। इसके लेखक उन देश-सेवियो मे से है, जिन्हे भारत के बडे-बडे राजनेताओ, साहित्यकारो, समाज-सेवियो आदि के निकट सपर्क मे आने का अवसर मिला। इतना ही नही, उन्होने स्वय राष्ट्रीय एव सामाजिक आदोलनो मे सक्रिय भाग लिया। यही कारण है कि उनके सस्मरणो मे बडी सजीवता है। प्रत्येक सस्मरण को पाठक रसपूर्वक पढता है।

पुस्तक की सामग्री छ: खण्डो मे विभक्त है। पहले खण्ड मे गाधीजी तथा उनके सहकर्मियो के सस्मरण है, दूसरे मे स्वाधीनता के सेनानियो के, तीसरे मे सस्कृति एव साहित्य की विभूतियो के और चौथे मे बिछुडे साथियो के। इन खण्डो मे जिन व्यक्तियो का चित्राकन किया गया है, उनके नाम से अधिकाश पाठक परिचित है, लेकिन पुस्तक के पाचवें और छठे खण्डो मे लेखक ने उन व्यक्तियो के जीवन-प्रसग दिये है, जिन्हे कोई नही जानता, लेकिन जिनकी रोमाचकारी गाथाए पढकर पाठक स्तब्ध रह जाते है। पुस्तक को समाप्त कर देने के बाद भी बहुत देर तक उन पात्रो की स्मृति मन पर बनी रहती है।

पुस्तक सरस है, पर उससे भी अधिक प्रेरणादायक तथा शिक्षाप्रद है। यह उस युग की याद दिलाती है, जो बीत चुका है, लेकिन जिसके बिना न वर्त्तमान का निर्माण हो सकता है, न भविष्य का।

आशा है, यह पुस्तक सभी क्षेत्रो मे चाव से पढी जायगी।

—मंत्री

दो शब्द

बीस साल पहले मेरे कुछ लेखों का संग्रह 'स्मृति कण' के नाम से प्रकाशित हुआ था। समय-समय पर मैं जो कुछ लिखता रहा, उसकी कोई कतरन आदि मैंने नहीं रखी, इसलिए उनका संग्रह प्रकाशित करने में बड़ी कठिनाई थी। अपनी रचनाओं को मैंने कभी महत्व नहीं दिया। इसलिए उनका संग्रह प्रकाशित करने की कल्पना भी नहीं आई। फिर भी कुछ मित्रों के आग्रह और प्रयत्न से 'स्मृति कण' की भूमिका पूज्य काका साहब कालेलकर ने लिखने की कृपा की तो वह अच्छा लगने लगा। उसके प्रकाशन के बाद के इन बीस वर्षों में भी समय-समय पर लिखता रहा और फिर बात चली कि उनका संग्रह प्रकाशित किया जाय। मुझे फिर लगा कि मैंने कुछ ऐसा लिखा कहां है, जिसे संग्रह के रूप में प्रकाशित किया जाय! पर साथ ही इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अपना लिखा प्रकाशित होता है तो खुशी ही होती है। इसलिए जब चि० सत्यनारायण ने मेरे पुराने और हाल के लेखों का संग्रह करने की कोशिश की तो मैं उसका विरोध न कर सका। उनके प्रयत्न से ही नये-पुराने लेखों में से कुछ चुनकर यह संग्रह तैयार हुआ है।

स्थिति मे क्या करना चाहिए, यह सब मैने लिख दिया, जो एक तरह से प्राणो की बात है—मन की उथल-पुथल का सही तानावाना है। हो सकता है, ऐसा ही स्पदन किसी के मन मे हो तो उसको ये लेख अच्छे लग जाय।

सग्रह के कुछ लेख हमारे देश के कतिपय महान लोगो के बारे मे है, जिनकी कृपा मुझे प्राप्त हुई और जिनको नजदीक से देखने और सुनने का मुझे अवसर मिला। इन महापुरुषो की अनेक बाते है और अनेको ने उन्हे लिखा भी है और मैंने भी 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' के अनुसार ही लिखा है। मैंने लिखा, उनसे उन महा-पुरुषो का जीवन कही अधिक महान है, पर मै अपने पात्र के अनुसार ही उस समुद्र से जल भर सका हू।

यह सग्रह हिन्दी जगत के सामने रखने मे सकोच है तब भी रख रहा हू। 'छमिहहिं सज्जन मोर ढिठाई।' इस बात की थोडी खुशी है कि सग्रह 'सस्ता साहित्य मडल' प्रकाशित कर रहा है, जिसकी स्थापना पूज्य जमनालालजी ने की थी। गाधी-साहित्य के प्रकाशन मे 'मडल' का महत्वपूर्ण स्थान है। गाधीजी और स्वतत्रता-सग्राम पर 'मडल' की प्रकाशित पुस्तको को एक समय बहुत लोगो ने पढा। उसके मधुर और सुगधमय पुष्पो मे यह सग्रह, जैसा भी वह है, मिलकर शायद किसी के कुछ काम का हो जाय।

—सीताराम सेकसरिया

१६, लार्ड सिनहा रोड
कलकत्ता-१६

विषय-सूची

बीता युग :
नई याद

गांधीजी और उनके सहकर्मी

१ : गांधीजी के प्रथम दर्शन

गाधीजी जव दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रह चला रहे थे, तव 'प्रताप' साप्ताहिक मे एक कविता पढी

"धन्य धर्मवीर गाधी !
धीरो मे वीर तू है,
धन्य कर्मवीर गाधी,
वीरो मे वीर तू है ।"

इस कविता से गाधीजी के वारे में जानने की मेरी इच्छा जागृत हुई । उसके वाद सन् १९१५ मे गाधीजी हिन्दुस्तान आये तो माडरेट पार्टी ने, जो उन दिनो हिन्दुस्तान की मुख्य राजनैतिक पार्टी थी, उन्हे कलकत्ता वुलाया । हजारो लोग हावडा स्टेशन पर उनके स्वागत और दर्शनो के लिए गये । गाधीजी तीसरे दर्जे से उतरे । काठियावाडी पगडी, लम्वा अगरखा, दुपट्टा, किन्तु पैर नगे । कस्तूरवा भी साथ थी । वह एक मामूली-सी मोटी रगीन साडी पहने हुए थी ।

उन दिनो मोटर का वहुत चलन नही था और मोटर की सवारी वहुत सम्मान की भी नही मानी जाती थी । जमीदारो, रईसो के यहा दो घोडो की जोडी गाडी रहती थी, जिसपर वे शाम को हवाखोरी के लिए निकलते थे । वैसी ही एक जोडी गाडी मे गाधीजी और कस्तूरवा को विठाया गया । गाधीजी के इंकार करने पर भी लोगो ने एक न सुनी । गाडी के घोडे खोल

दिये गए। जनता ने गाडी को खींचा। प्रथम दर्शन का दृश्य आज भी आंखों के सामने ज्यों-का-त्यों है। शाम को एक सभा थी, जिसमे गाधीजी का व्याख्यान था। यह सभा शायद युनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूट मे थी। महाराज कासिम बाजार मणीन्द्रनाथ नन्दी सभापति थे। इस सभा मे माडरेट पार्टी के सभी नेता आये थे। गाधीजी जब बोलने के लिए उठे तो उनके व्याख्यान को सुनने की लोगो मे बडी उत्सुकता थी, पर जब वह बोलने लगे तो बहुत-से लोगो को लगा कि यह आदमी देखने मे जैसा साधारण है, वैसा ही बोलने मे भी साधारण है, न कोई जोश है, न कोई प्रभावशाली बात कहता है। जैसे किसी मूर्ति मे से आवाज आती हो, वैसा लगता है, शरीर तक भी नही हिलता। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और विपिनचन्द्र पाल की जोशीली बुलन्द आवाज मे व्याख्यान सुननेवाले लोगो को कुछ लगा ही नही। लाउड स्पीकर की तो उन दिनों कल्पना भी नही थी। व्याख्यान मे ऊंचा गला जितना काम करता था, दूसरी बातें उसकी तुलना मे कम रहती थीं। फिर भी कुल मिलाकर ऐसा आभास हो रहा था कि जो कुछ कहा जा रहा है, उसमे दिखावट या लोगों पर प्रभाव डालने की कोशिश नही, बल्कि बोलनेवाले के दिल की सचाई है।

इसके बाद दूसरी बार गाधीजी कलकत्ता आये और टाउन हाल में कुली-प्रथा के विरुद्ध उनका व्याख्यान हुआ। वह भी मैं सुनने गया। व्याख्यान समाप्त होने पर गाधीजी पैदल ही चल पडे, तो पहले-पहल उनके चरण-स्पर्श का मौका मिला। टाउन हाल से वह अपने सबसे बडे लडके हरिभाई (हरिलाल गाधी) के यहां, जो बडाबाजार के एक मकान मे रहते थे, गये। सैकडों आदमी उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। गाधीजी की तेज चाल के साथ न चल सकनेवाले लोगों का साथ छूटता जाता था। ऐसे लोगों की संख्या काफी थी।

तीसरी बार सन् १९१७ में कलकत्ता-कांग्रेस के मौके पर, जो श्रीमती एनी बेसेंट के सभापतित्व मे हुई थी, गाधीजी को देखने का मौका मिला। उस समय तक माडरेट पार्टी का कांग्रेस पर पूरा-पूरा अधिकार था। उस कांग्रेस में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भी आये। लोकमान्य ही उन दिनों भारत के सबसे बडे राजनैतिक नेता थे। उनकी भी गांधी के जोड की शान

दिये गए और जनता ने उसे खीचा। गाधीजी जमनालालजी के अतिथि थे। इसलिए सारा प्रबन्ध हम लोगो के हाथ मे ही था। लोकमान्य को भी बडाबाजार के एक मोहल्ले मे ठहराया गया था और उसका प्रबन्ध भी बडाबाजार के लोगो ने ही किया था। इस प्रकार भारत के दो बड़े नेताओ को, जिनमे एक वर्तमान का सबसे बडा नेता था और दूसरा भविष्य का, हम लोगो को देखने और सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लोकमान्य बहुत ही तेजस्वी और महान् लगते थे, समुद्र जैसी गम्भीरता और गहराई के सामने जाने या उनकी सेवा करने का साहस नही होता था। इसके विपरीत गाधीजी की सरलता, निर्मलता, सादगी, मितव्ययिता, हर चीज के समय का हिसाब, आदि बातो के कारण उनके निकट जाने मे भय नही लगता था।

उन्ही दिनो काग्रेस के साथ राष्ट्रभाषा सम्मेलन का भी प्रारम्भ हुआ। लोकमान्य इसके सभापति थे। यह सम्मेलन का शायद दूसरा अधिवेशन था। इस सम्मेलन मे काग्रेस तथा बगाल के सभी नेताओ ने भाग लिया। प्राय लोग अग्रेजी मे बोले। सरोजिनी देवी भी अग्रेजी मे बोली। लोकमान्य का सभापति का भाषण भी अग्रेजी मे हुआ। गाधीजी जब बोलने खडे हुए तो उन दिनो जैसी उनकी हिन्दी थी उसमे बोले। उन्होने कहा कि लोकमान्य हमारे सबसे बडे नेता है और वह जो चाहे, करे, वह महत्व का है, पर राष्ट्रभाषा सम्मेलन का सभापति यदि विदेशी भाषा मे बोले तो वह राष्ट्रभाषा सम्मेलन कैसा ? लोकमान्य ने तुरन्त कहा, "आप ठीक कहते है, पर मेरी तो लाचारी है कि मै जरा भी हिन्दी नही जानता।" गाधीजी ने बडी नम्रता से कहा, "आप मराठी जानते है, सस्कृत जानते हैं, जो हमारे देश की भाषाए हैं।" फिर कहा, "यह सरोजिनी देवी (हिन्दुस्तान की बुलबुल), जो बहुत अच्छी उर्दू जानती है, यह भी क्या अग्रेजी मे ही बोल सकती हैं ?" इस प्रकार इस सम्मेलन मे गाधीजी ने हवा ही बदल दी। इसके बाद बोलनेवालो मे एक भी आदमी अग्रेजी मे नही बोला। सब अपनी भाषा या हिन्दी मे बोले। शाम को लोकमान्य का सार्वजनिक भाषण था, जिसमे उन्होने कहा कि आज मै पहले-पहल हिन्दी मे बोल रहा हू। मेरी भाषा-सम्बन्धी कितनी गलतिया होगी, यह मैं नही

जानता, पर मैं मानता हू कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है और हमे इसमे ही अपना काम करना चाहिए। लोकमान्य का व्यक्तित्व और प्रभाव अद्भुत था। सभा मे ज्यादा सख्या बगालियो की थी, पर सबने शान्तिपूर्वक उनके व्याख्यान को सुना और बहुत धीरे-धीरे, घरेलू शब्दो मे, सरल भाषा में काफी प्रभावशाली व्याख्यान हुआ।

इसके पश्चात् सन् १९१८ मे गाधीजी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति बने। राष्ट्रभाषा के लिए जीवन-भर उन्होंने जो काम किया, वह एक अलग प्रसग है और बहुत बडा है। इसी बीच चम्पारन सत्याग्रह, खेडा जिला सत्याग्रह तथा अहमदाबाद मिल मजदूर झगडे का अनशन, इन तीन आन्दोलनो मे गाधीजी ने जो सफलता प्राप्त की तथा उन्होंने जो नई दिशा दी, उससे उनके प्रभाव मे काफी वृद्धि हुई। गाधीजी के प्रति देश हृदय से श्रद्धान्वित हो रहा था। इसी बीच रौलट एक्ट का आन्दोलन आ गया और इसके विरोध मे सारे देश मे प्रदर्शन हुए, जो अपने ढग के निराले थे। इन सबका नेतृत्व गाधीजी ने किया। इस सिलसिले मे अमृतसर के जलियावाला बाग की सभा मे जनरल डायर ने गोली चलाकर भयकर हत्याकाड कर दिया, जिससे देश मे ऐसी आग लगी, जो स्वाधीनता-प्राप्ति तक नाना रूपों में जलती रही।

इस काड के कुछ ही दिनो बाद १९१९ के दिसम्बर मे अमृतसर मे कांग्रेस हुई, जिसके सभापति प० मोतीलालजी थे। इस कांग्रेस मे लोकमान्य तिलक आदि सभी नेता सम्मिलित हुए, पर माटेगू-चेम्सफोर्ड-सुधार पर जो प्रस्ताव आया, उसमे कांग्रेस के सभी नये-पुराने नेताओ को गाधीजी के प्रभाव का पता चल गया। सन् १९२० के सितम्बर मे लाला लाजपतराय के सभापतित्व मे कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन कलकत्ता मे हुआ, जिसमे गाधीजी ने असहयोग का प्रस्ताव रखा और स्कूल कालेज, अदालत-कचहरी तथा विदेशी माल का बहिष्कार, सरकारी उपाधियों का त्याग, आदि का कार्यक्रम बताया। इस प्रस्ताव का सभी पुराने नेताओ ने विरोध किया, यहांतक कि लालाजी ने भी अपने सभापति के व्याख्यान मे इसका विरोध किया। इस कांग्रेस तक मि० जिन्ना भी कांग्रेस मे थे। इसके बाद सदा के लिए उन्होंने

काग्रेस छोड दी। उनका तो विरोध होना ही था। समर्थन मे केवल मोतीलालजी और अली-बन्धु थे। जहातक मुझे याद है, नेताओं में प्रस्ताव के पक्ष मे कोई नही बोला पर प्रस्ताव बडे बहुमत से स्वीकार किया गया। चार महीने बाद नागपुर-काग्रेस मे यह प्रस्ताव, जो कलकत्ता की विशेष काग्रेस मे स्वीकृत हुआ था, सारे नेताओ के समर्थन के साथ एक प्रकार से सर्वसम्मत रूप से पास हो गया।

इस प्रकार सन् १९२० के दिसम्बर मे देश ने सर्वमान्य नेता के रूप मे गाधीजी को स्वीकार कर लिया और काग्रेस पूर्ण रूप से गाधीजी की सलाह से चलने लगी। सन् १९१५ मे गाधीजी भारत मे आये थे। सन् १९२० मे वह काग्रेस के सर्वोच्च श्रद्धेय नेता स्वीकार कर लिये गए और महात्मा के नाम से पुकारे जाने लगे। तबसे सन् १९४७ तक स्वाधीनता प्राप्ति का इतिहास गाधी-युग का इतिहास है, जो महान्, अनोखा एव प्राणवान तो है ही, विश्व के स्वाधीनता-इतिहास मे भी एक नया अध्याय जोडता है।

बुद्ध और ईसा जैसे महापुरुषो ने अहिंसा के प्रभाव पर काफी जोर दिया, पर अहिंसक प्रतिकार की बात गाधीजी ने बतायी और उसको सामूहिक रूप दिया। उसका अनेक क्षेत्रो मे अनेक बार प्रयोग किया और सफलता प्राप्त की। सबसे बडी बात यह है कि जिसका उन्होने प्रतिकार किया, उसका भी प्रेम वह प्राप्त कर सके। यह उनके जीवन की महान सफलता और चरम साधना है। राजनैतिक उपलब्धियो से भी बहुत बडा, बहुत सच्चा, बहुत निर्मल और बहुत उदार रूप उनकी जीवन-साधना का है। उनके व्यक्तित्व की, उनके व्यवहार की और सम्बन्धो की छाप अनेको के हृदयो मे अकित है।

गाधीजी के सम्पर्क का ज़रा-सा स्पर्श, जो भावना, जो सस्कार दे गया, वह आगे कभी मिटा नही। जिसे वह सत्य मानते थे, उसे करने की उनमें अचूक श्रद्धा और हिम्मत थी। शायद १९२८ की बात है। एक बार घनश्यामदासजी बिडला ने उनसे पूछा कि आपके अनेक कामो मे कौन-सा ऐसा काम है, जिसे आप बडा काम मानते हैं? उन्होंने कहा, "मै तो बडा-छोटा सोचता नही, जो काम ईश्वर मुझसे कराता है, वह करता हू,

पर तुम मुझे देख रहे हो,समझ रहे हो, मेरे कामो मे तुम्हे सबसे बडा कौन सा लगता है ?" घनश्यामदासजी ने कहा, "आपके सभी काम बडे है, पर बछड़े को जहर की सूई दिलवाने मे आप पर बहुत जोर पडा होगा, या बहुत हिम्मत की आपने।" गाधीजी ने कहा, "इस काम का विरोध तो बहुत हुआ और आज इतने दिनो बाद भी मेरे पास अनेको पत्र आते है, पर यह काम करने मे मुझे न तो बहुत सोचना पडा, न कोई ज्यादा समय लगा। मैंने बछड़े की पीडा देखी और डाक्टर से कहा कि इसकी पीडा कम करने का उपाय करो। डाक्टर ने कहा कि इसकी पीडा तो इसकी मृत्यु से ही मिट सकती है, नही तो यह ऐसे ही तडपेगा और मर जायगा। मैंने सोचा कि क्या मैं इसे मृत्यु दे सकता हू ? लगा कि, हाँ, काका कालेलकर मेरे पास थे। उनको देखने के लिए कहा और उनकी राय ली तो उन्होंने मेरी राय का समर्थन किया। मैंने डाक्टर से सूई देने के लिए कह दिया, उसको कष्ट से छुटकारा मिल गया। यह एक साधारण घटना है, पर इसको निश्चय ही बडा तूल मिल गया है। मुझपर जोर पडा था चौरी-चौरा काड के समय,बारडोली सत्याग्रह बन्द करने मे और उसके बारे मे मैंने तीन दिन तक सोचा था। उसकी जो प्रतिक्रियाएँ हुई वे बहुत थी।"

हो सकता है, इसकी भाषा और शब्दो मे बहुत-कुछ फर्क रह गया हो, पर भाव-विचार जहा तक याद है, यही थे। उनके व्यक्तिगत सम्पर्क की अनेक बातें याद आती है। भारत के हर प्रात मे गाधीजी ने अपने व्यवहार और कार्यों से आदमी बनाये, जो गाधी-युग के विशेष आदमी बने। बिहार मे पूज्य राजेन्द्रबाबू, गुजरात मे सरदार पटेल, मद्रास मे राजाजी, सिध मे जयरामदास दौलतराम और आचार्य कृपालानी, आसाम मे बारदोलोई, कर्नाटक मे गगाधरराव देशपाडे, सयुक्त प्रान्त मे मोतीलालजी और जवाहरलालजी उडीसा मे गोपबन्धु चौधरी, बगाल मे सतीश दास गुप्ता और प्रफुल्लचन्द्र घोष, हरदयाल नाग आदि, ।

पजाब और बगाल मे वह चोटी के नेताओ को अपना पूर्ण अनुयायी नही बना पाये, फिर भी उनके कार्यों का प्रभाव वहा भी कम नही हुआ। इनके अलावा साधारण कार्यकर्ताओ को नई प्रेरणा, नई दिशा और देश-

समाज की सेवा करने के लिए प्रेरित करने मे गाधीजी की जो देन है, वह इस युग की सबसे बडी देन है।

रचनात्मक कार्यो द्वारा देश के हर कोने से उनका तथा उनके कार्य-कर्ताओ का अटूट सम्बन्ध स्थापित हो गया था। प्रत्येक कार्यकर्ता के सुख-दु ख मे वह व्यक्तिगत रुचि ही नही रखते थे, उसकी पूरी सभाल भी करते थे। कार्यकर्ता उनके पास जाकर उनके सामने अपना सुख-दु ख, अपनी समस्याए रखता और वहा से समाधान पाकर सतोप और नये बल का अनुभव करता। गाधीजी बहुत छोटी-छोटी बातो पर ध्यान देते और उन बातो को जीवन की बुनियाद मानकर चलते। हर क्षण सावधान और जागरूक रहकर जीवन की पवित्रता और सत्य का आग्रह रखते तथा अपने साथ रहनेवाले आश्रमवासियो के जीवन को उन्नत बनाने के प्रयत्न करते।

दक्षिण अफ्रीका मे ही उन्होने इस प्रकार का कार्य आरभ कर दिया था और फिनिक्स-आश्रम मे मगनभाई जैसे लोग तैयार हो चुके थे। भारत मे आने के बाद उन्होने अपने आश्रम मे ऐसे कार्यकर्ता तैयार किये, जीवन-साधक और शोधक बनाये, जैसे किशोरलालभाई, महादेवभाई, विनोबाजी, काकासाहब कालेलकर आदि, जो उनके दर्शन के प्रमुख व्याख्याता बने।

जमनालालजी जैसे व्यवहारकुशल लोगो को उन्होने अपना बना लिया। एक बार उन्होने कहा था कि मैं तो आटा पीसता हू, रोटी तो जमनालाल ही बनाता है। देश की सेवा करने के लिए उन्होने अनेक लोगो को प्रेरणा दी और शायद कोई भी क्षेत्र ऐसा नही बचा, जिसपर उनकी छाप न हो। उनका उद्देश्य मानव-कल्याण था। वह राजनीति मे पडने के लिए बाध्य हुए। वास्तव मे जिसको लोग राजनीति कहते और मानते है वह उनकी राजनीति नही थी। जमनालालजी की मृत्यु पर श्राद्ध-दिवस के दिन प्रवचन करते हुए उन्होने कहा था, "जमनालालजी के जीवन मे राजनीति नही थी। मैं राजनीति मे न पडता तो जमनालाल राजनीति मे नही आता, पर पराधीन देश के लोगो को कुछ भी करना हो तो सबसे पहले स्वाधीनता प्राप्त करनी पडती है, इसलिए बरबस राजनीति मे पडना पडता है।"

राजनैतिक आदोलनो का पूरा नेतृत्व करने के साथ-साथ रचनात्मक कार्यों द्वारा देश की हर समस्या को उन्होंने क्रातिकारी ढग से सुलझाने की दिशा दी। सबसे पहले चर्खा-सघ बना, फिर गाधी सेवा सघ, हरिजन सेवक सघ बना। ग्राम उद्योग सघ, तालीमी सघ, आदि-सघो द्वारा आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक दृष्टि से हजारो कार्यकर्ता तैयार किये, जो देश के कोने-कोने मे नाना रूपो मे काम करते थे।

२ : गांधीजी : सत्य और सत्याग्रह

गाधीजी के जीवन का आधार सत्य था। इस सत्य का सूक्ष्म दर्शन उन्हे सात वर्ष की अवस्था मे अपने पिताजी के साथ हरिश्चन्द्र नाटक देखते समय हुआ था। सत्य की खोज मे जो बाते उनके सामने आई उनको वह अपनी सत्य-प्राप्ति का साधन बनाते गये। अपने सत्य के प्रयोगो के सम्बन्ध मे वह एक वैज्ञानिक जैसा मनोभाव रखते थे। आत्मकथा मे उन्होंने लिखा है, "जैसे एक वैज्ञानिक अपने प्रयोग अत्यन्त नियमानुसार, विचार-सहित और सूक्ष्मतापूर्वक करता है, फिर भी उससे उत्पन्न हुए परिणामो को अतिम नही मानता, अथवा यह नही कहता कि यही सच्चे परिणाम है, वैसे ही अपने परिणामो के विषय मे मेरा मानना है।" गाधीजी का सत्य क्रियात्मक सत्य है और इसी सत्य के आधार पर उनका जीवन सचालित हुआ। आगे जाकर उस सत्य के प्राप्त करने के साधनो मे अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि आते गये।

आदमी हू । आप जो कुछ करे, अपनी बुद्धि के आधार पर करे, मेरे कहने से नही ।" फिर भी ऐसे बहुत-से लोग थे, जो यह मानते थे कि अमुक बात गाधीजी ने कही है, इसलिए हमे करनी ही चाहिए । गाधीजी ने जब कहा, "यह काम तो होना ही चाहिए, यदि देश के नेता मेरा साथ न देगे तो मैं अकेला ही इस काम को शुरू कर दूगा, ऐसे अवसर पर देश के सारे नेता उनके साथ हो गये । ऐसे बहुत-से उदाहरण है जब गाधीजी के कारण ही आदोलन शुरू हुआ और रुका रहा या बन्द हो गया । मुझे लगता है कि गाधीजी की सत्यनिष्ठा इतनी तीव्र थी कि वह दूसरे आदमियो को भी उनके कहे अनुसार सोचने को बाध्य करती थी ।

गाधीजी के जीवन की प्रत्येक क्रिया सत्य रूप हो गई । एक बार एक प्रसिद्ध साधक ने उनसे पूछा, "बापू, हम लोग जो चाहते है कि जीवन को सत्य बनाये, सो चेष्टा करने पर भी सफल नही होते और बिना कारण हमसे असत्य आचरण हो जाता है या असत्य बोल दिया जाता है । हम जब सोचते है तो अपने अन्दर सुख-भोग की इच्छा नही दीखती, साथ ही लालच भी नही दिखाई देता, पर हम काम करते हुए इसलिए डरते है कि कही हम से झूठ आचरण तो नही हो जायगा । आप इतना काम करते है, इतनी चीजो को, इतने कार्यो को सभालते है उसमे आपसे यह सत्य कैसे निभता है ?"

इस सवाल के उत्तर मे गाधीजी ने कहा था, "आज तो मेरी यह स्थिति है कि मै जो करू, वही मुझे सत्य जान पडता है, जो असत्य है वह मुझसे होगा ही नही, मै जो कुछ करता हू, जो कहता हू, वह सब सत्य के लिए है, यानी परमात्मा के लिए है और सत्य ही परमात्मा है ।'

सत्य एक पद्धति बन गया, शायद इसी पद्धति को वह देश के जीवन मे, हरेक मनुष्य के जीवन मे, उतारना चाहते थे । बछडे को जहर की सूई दिलाते समय भी यही सत्य था और यही पद्धति—बन्दरो को मरवाते समय भी और शरीर पर से गुजरनेवाले साप को न मारने मे भी । कागज के छोटे-से टुकडे को भी सभालकर रखने, पानी पीते या हाथ धोते समय एक बूद पानी भी व्यर्थ न चला जाय, इसका ख्याल रखने मे और जरूरत पडने पर पानी का टब भराकर उसमे पन्द्रह-बीस मिनट बैठकर सोने मे—सब काम ो

मे सत्य और उसका प्रयोग था। कुष्ठ-पीडित परचुरे शास्त्री को मालिश करना और वायसराय से वात करना उनके लिए समान सत्य था।

दक्षिण अफ्रीका मे घोडागाडी के एक कोचवान से मार खाते हुए उन्हे सत्याग्रह का दर्शन सहज-सत्य के रूप मे हुआ था—किसीको कष्ट दिये विना, किसीका वुरा चाहे विना अन्याय का प्रतिकार कैसे किया जा सकता है, अपने अधिकार की रक्षा कैसे की जा सकती है और मानव के अन्दर भलाई को कैसे जागृत किया जा सकता है, यह गाधीजी ने देखा। जैसे किसी शुष्क वट वीज मे विशाल वटवृक्ष छिपा रहता है उसी तरह एक छोटी-सी घटना मे महान सत्याग्रह छिपा हुआ उन्हे दिखाई दिया। उनके जीवन की हर छोटी-से-छोटी घटना इसीलिए उनके जीवन की किसी महान घटना से कम नही थी। उन्होने अपने जीवन के कार्यों मे छोटे-वडे का विचार नही किया। वह कहा करते थे कि प्रभु के काम मे छोटा-वडा मानने वाला मैं कौन ? जिस समय जो काम वह मुझसे लेना चाहते है, वही मेरे लिए वडा है। हा, हम लोग वरावर यही सोचा करते थे कि गाधीजी ने इस वार जो काम किया, वह महान काम था, अथवा यह काम उनके जीवन का सवसे वडा काम था। पर कुछ ही दिनो के वाद वह फिर इतना वडा काम कर डालते थे कि पिछले कुल काम उस काम के सामने छोटे दिखायी देने लगते। दरअसल उनके जीवन मे अपने कार्यों मे कोई छोटा-वडा काम था ही नही। यही वजह है कि वह हमारे जीवन के हर क्षेत्र मे प्रवेश कर सके। मानव-जीवन के जितने क्षेत्र हो सकते हैं, सवमे उन्होने काम किया। हमारे देश की जितनी समस्याए थी, सवको सुलझाने मे उन्होने दिशा-दर्शन किया।

उनके सिद्धातो का आधार था। उन्होने एक बार कहा था, "हमे कहा जाता है कि हम विनाश करते है, हमे सृजन करने का, रचना करने का, मौका ही कहा दिया जाता है, हम तो रचना ही करना चाहते है।" वह तो रचनात्मक कार्यों द्वारा ही स्वराज्य प्राप्त करने की बात कहते थे। खादी या चरखा प्रतीक था—असली स्वराज्य का रचनात्मक शक्ति मे छिपे होने का प्रतीक।

३ : कस्तूरबा

पूज्य बापूजी दक्षिण अफ्रीका मे थे और वहा सत्याग्रह मे सफलता प्राप्त करने के समय भारत मे वह प्रसिद्ध हो गये थे। सन् १९१५ मे वह भारत आये तब कलकत्ते के हावडा स्टेशन पर हजारो आदमियो ने उनका स्वागत किया। उस समय उनके साथ कस्तूरबा थी। तब उनको बहुत कम लोग जानते थे। बापूजी की गाडी के घोडे खोल दिये गए और नवयुवको ने उनकी गाडी खीची। उस गाडी मे कस्तूरबा भी बैठी थी। उस समय बापूजी की वेशभूषा काठियावाडी पगडी, अगरखा, और धोती तथा दुपट्टा था। कस्तूरबा एक रगीन साडी पहने थी। हम लोगो ने पूछा कि ये कौन है तो बताया गया कि ये गाधीजी की पत्नी है। कस्तूरबा का यह मेरा प्रथम दर्शन था। इसके बाद बापू जी के दर्शन करने तथा नजदीक से देखने के मौके आते रहे, पर बा का दर्शन करने और मिलने का मौका बहुत देरी से आया।

बा मूक तपस्विनी थी और बापूजी के प्राणो मे अपने प्राण डालकर अपने को धन्य मानती थी। वह कभी किसी काम मे सामने आने की बात सोचती ही नही थी, न उन्हे अखबारो मे नाम तथा फोटू का पता था। जहातक मैं जानता हू, उनका मानस, विचार, चेष्टा और सब कुछ एक ही था कि बापूजी को सन्तुष्ट कर सकू। बा की बापूजी की सेवा करने की

इच्छा बहुत रहती थी, पर बापूजी के पास मीराबहन, प्रभावती बहन आदि कई बहनें थी, जिनमे बापू की सेवा करने की प्रतिस्पर्धा रहती थी। इसलिए बा बीच मे न पडती कि इन बहनो को अवसर मिले और उनके मन को मेरी वजह से कोई ठेस न लगे। लेकिन उनका मन चाहता था कि मौका मिले तो मैं भी कुछ करूं। एक बार मैंने देखा कि बापूजी के झूठे बर्तन कस्तूरबा धोने के लिए ले गईं। पानी दूर था। वहा जाकर बर्तन धोये और जब लौटी तब थकावट थी और साथ ही उनके चेहरे पर एक सतोष भी था।

बापूजी जितने कोमल थे उतने ही कठोर भी थे। वह अपने नजदीक के लोगो को जिस रूप मे कसते थे और उनकी जो कठिन परीक्षा करते थे उसको वही जानते है, जो इस मार्ग से गुजरे है। बा को तो इस कठिन परीक्षा मे से बहुत बार गुजरना पडा। बा सस्कार और स्वभाव से भारतीय नारी की प्रतिमूर्ति थी, जो पतिपरायण, सद्गृहस्थी और कुटुम्ब की मर्यादाओ का पालन करनेवाली होती है। लेकिन बापूजी की कठिन तपश्चर्या के सामने, उनका साथ देने के लिए बा की एक ही साध रह गई थी कि वह बापूजी को सन्तुष्ट रख सके। बापूजी के सारे नियम, व्रत और कार्यो मे उन्होंने इसी भावना से पूरा-पूरा सहयोग दिया। बापूजी की इच्छा ही उनकी इच्छा रही। सन् १९४२ मे पुलिस बापू को बम्बई के बिडला हाउस मे गिरफ्तार करने गई तो बापू, महादेवभाई और मीराबहन तीन के नाम वारण्ट थे, लेकिन पुलिस ने कहा कि बापू किसीको साथ लेना चाहे तो हम साथ ले जा सकते है। बापू ने कस्तूरबा से पूछा, "तुम चलोगी क्या ?" कस्तूरबा ने कहा, "जो आप कहे। मै तो जाना चाहती ही हू।" बापू ने कहा, "तुम चल सकती हो, पर अच्छा यह होगा कि शिवाजी पार्क की मीटिंग मे जहा मैं बोलनेवाला था, वहा तुम जाओ और बोलो। इसका अर्थ यह हो सकता है कि पुलिस तुम्हे गिरफ्तार करे

और बा शाम को बिडला हाउस से शिवाजी पार्क मे भाषण देने के लिए चली तो बाहर निकलते ही गिरफ्तार कर ली गई। दीर्घकाल तक बापूजी की सेवा मे रही और बापूजी की गोद मे ही उन्होने प्राण त्यागा, जो एक पतिपरायण स्त्री की चाह होती है।

बापू तो अस्वाद वृत्ति के व्रती थे। बा ने भी इसको अपनाने की कोशिश की। इसका एक उदाहरण याद आ रहा है। एक बार घूमते समय बात चली तो बापू ने कहा, "मैने दाल खाना कैसे छोडा यह बा से पूछो।" बात कैसे चली थी, मुझे याद नही आ रहा है। बापू ने कहा, "बा अदरख बहुत खाती थी। मैने उसे अदरक छोडने के लिए कहा। कई दिन कहता रहा। उन दिनो मै दाल खाना पसन्द करता था। एक दिन बा ने तैश मे आकर कह दिया, 'तुम दाल खाना छोड दो ?' मैंने दाल खाना छोड दिया कहा, आज से दाल नही खाऊगा। बा तो बेचारी हैरत मे पड गई और भौचक्की हो गई। यह मैंने क्या किया ! हाथ जोडे, मिन्नत की, माफी मागी और कहा, 'मैने तो योही कह दिया था। तुम दाल खाओ, इससे मुझे खुशी होगी।' पर मैंने तो दाल छोड दी वह छोड ही दी।" इस प्रकार के बा और बापू के अनेक प्रसंग मिलते है।

एक बार की बात है जब गाधीजी जुहू (बम्बई) मे ठहरे थे। कस्तूरबा बम्बई के अपने किसी रिश्तेदार के यहा मिलने गई थी। वहा से लौटने पर दूसरे दिन उनको बुखार आ गया। इसपर गाधीजी ने उनसे कहा, "तुमने कल अपने रिश्तेदार के यहा खाने मे असयम किया होगा !" यह सुनकर कस्तूरबा एकदम सहम गई। उन्होने जानकीदेवी बजाज से कहा, "जानकी बेन, बापू अपने लोगो को कभी भी सराहनेवाले नही है। अपने सूली पर भी चढ जाय और बापू को मालूम रहे कि जीते है, तबतक वह यही कहेगे कि तुम सूली पर तो चढी पर तुम्हारे मे ये-ये कमिया है, जब सूली से लाश उतर जायगी तभी बापू को सन्तोष मिलेगा, तो अपने को तो वही करना है। बताओ जानकीबेन, ७० वर्ष की उम्र मे और इतने दिनो बापू के साथ रहकर मैं क्या असयम कर सकती थी ?"

बापूजी के उपवासो के समय जब-जब चिन्ता का अवसर आता था तब देखा गया कि कस्तूरबा का अडिग विश्वास बना हुआ था कि बापू मेरे

पहले जा नही सकते। वह किसी भी स्थिति मे विचलित न होती। आगाखां महल के प्रसिद्ध उपवास के समय जब डाक्टर निराश हो चले थे और बापू की अवस्था निहायत नाजुक हो गई थी तब भी कस्तूरबा का धीरज टूटा नहीं। मेरी लडकी पन्ना आगाखा महल मे बापूजी के दर्शन करने गई तब उन्होंने बातो मे कहा कि बापू सदा कष्ट देते रहे है, वह दे रहे है। जा कैसे सकते है ? इस परीक्षा मे भी निश्चय ही पूरे उतरेगे।

बा कभी दुःखी होती थी तो हरिलालभाई के लिए। हरिलालभाई का बापूजी से चाहे जितना विरोध रहा हो, लेकिन बा के प्रति उनके मन मे असीम श्रद्धा थी। इसको गाधी-परिवार के, जो भारत के कोने-कोने मे बिखरा हुआ था और है, कुछ लोग जानते है और इसके कई उदाहरण आखो के सामने से गुजरे है जब हरिलालभाई की श्रद्धा और बा का दु ख प्रकट होता था। एक बार की बात है कि बापूजी यात्रा कर रहे थे, तो स्टेशन की भीड 'महात्मा गाधी की जय' के नारे लगा रही थी। उसमे से एक आवाज आयी 'कस्तूरबा की जय' और लोगो का ध्यान उस तरफ गया। कस्तूरबा ने भी देखा कि हरिलालभाई आ रहे है। हरिलालभाई की वेश-भूषा और शरीर देखकर बा बहुत दु खी हुई। मैले और फटे कपडे, दात गिर गये, बाल सफेद हो गये, शरीर कृश हो गया। यह देखकर बा को महान् कष्ट हुआ। हरिलालभाई ने बा को मौसम्बी दी, प्रणाम किया और कहा कि यह मै तुम्हारे लिए लाया हू । इसे तुम ही खाना। तुम न खाओ तो मुझे लौटा दो। मैं बहुत मुश्किल से लाया हू । बापू ने कहा, "मेरे लिए कुछ नही लाये ?" हरिलालभाई ने कहा, "हा, आपके लिए कुछ नही लाया। आप यह सुन लीजिए कि आप जो बडे बने है, बा के ही पुण्य प्रताप से बने है।" बापूजी ने कहा, "अच्छा, हमारे साथ चल।" बा ने बहुत आग्रह से कहा, "हरि, मेरे साथ चल।" हरिलालभाई ने करुण स्वर मे कहा, "बा अब मै बहुत दूर चला गया। तेरे साथ कैसे चलू ?" इस प्रकार बा का वात्सल्य और हरिलालभाई की श्रद्धा अक्षुण्ण थी।

जी के यहा वर्धा मे रहते समय, सेवाग्राम बनने के पहले और बाद मे भी मुझे और मेरी पत्नी भगवान देवी को वहा जाने और रहने का बहुत मौका मिला। जमनालालजी के यहा रात-दिन अतिथियो का जमघट लगा रहता था और रसोई के काम मे भगवान देवी काफी मदद करती थी। बा वहा आती तब वह कुछ-न-कुछ बनाकर बा को खिलाने का प्रयत्न करती और बा वृद्ध तो थी ही, बहुत प्रेम से सराहना के साथ कुछ खा लेती थी। इस प्रकार बा एक बहुत ही साधारण स्त्री की तरह अपने आप को रखती थी, मानती थी और व्यवहार करती थी। मैंने कभी ऐसा नही देखा कि बा को यह भान भी हो कि मैं ससार के एक महापुरुष की पत्नी हू। वे तो एक साधारण महिला की तरह रहती, आश्रमवासियो की तरह अपना जीवन बिताती और सबके साथ बहुत ही सहृदयता का व्यवहार करती।

एक बार भाई महावीरप्रसाद जी पोद्दार के साथ भगवानदेवी और दो-तीन बच्चे सेवाग्राम तागे मे गये। बापू घूमने निकले थे। आश्रम के नजदीक उन सबको उन्होने तागे मे आते हुए देखा। उन दिनो गो सेवा सघ की स्थापना हुई ही थी। बापू लौट कर आये तब पोद्दारजी से विनोद मे बोले, "गौ की रक्षा करने का अर्थ घोडे को मारना है क्या ?" पोद्दारजी ने कहा, "हम लोग दो ही आदमी थे और तो बच्चे है।" भगवानदेवी मोटी अधिक थी तो कहने लगे, "क्या यह भी एक ही आदमी है ?" सब हँसने लगे। बापू ने पोद्दारजी से कहा, "जाते समय पैदल जाओ और तागे को खाली ले जाओ। आते समय घोडे को कष्ट दिया, जाते समय आराम दो।" पोद्दारजी ने कहा, "ठीक है।" बा वही बैठी सुन रही थी। तुरन्त बोली, "यह बेचारी मोटी स्त्री इतनी दूर पैदल कैसे जायेगी और ये बच्चे कैसे जायगे ?" भगवानदेवी से बोली, "बापूजी तो ऐसे ही 'गैली' बातें करते है। तुम बात मत मानना, तागे मे बैठकर जाना।" बापूजी ने सुधार किया, "मेरी बात भी मानो और बा की भी मानो। जितनी दूर पैदल चल सकती हो पैदल जाओ, न चल सको तो तागे मे बैठ जाना।"

४ : जमनालालजी

शायद सन् १९१७ की वात है। जमनालालजी कुछ मित्रो के साथ कलकत्ते के बोटानिकल बाग मे घूमने गये थे। वहा साइकिल की दौड लगाने की बात चली, तो जमनालालजी सबसे पहले तैयार। लोगो ने कहा, "आप इतने मोटे आदमी है, साइकिल पर से गिर पडेगे!" वह बोले, "मैं तो देहाती आदमी ठहरा। वहा तुम्हारे कलकत्ते-जैसी मोटरे थोडे ही है! जल्दी का काम होता है, तो साइकिल ही काम आती है।" जो हो, जमनालालजी साइकिल पर चढे। देर तक घूमते रहे। कई लोग जो अपने को साइकिल चलाने मे बडे तेज मानते थे, उनसे भी जमनालालजी मीर निकले। परन्तु अन्त मे सामने से एक मोटरगाडी आई और वह अपना तौल नहीं सम्हाल सके, गिर ही पडे। लोग सहम गये। उन्होंने समझा, मोटर का धक्का लग गया। मगर जमनालालजी तुरन्त खडे हो गये और बोले, "कुछ नही हुआ।" लेकिन दाहिने घुटने से बराबर खून बह रहा था। योंही पोछ-पाछ कर घर आये।

दर्द सख्त था, लेकिन मुह से कहते नही थे। डाक्टर को बुलाया गया। उसने कहा, चोट मामूली नहीं है। तब उस समय के सबसे बडे सर्जन डाक्टर सुरेश सर्वाधिकारी को बुलाया गया। उन्होंने कहा, "मास के भीतर कंकड घुस गये है। आपरेशन करना होगा। आपरेशन के लिए क्लोरोफार्म भी देना पडेगा।" जमनालालजी ने कहा, "इसकी क्या जरूरत है?" डाक्टर बोला, "बिना क्लोरोफार्म के आपरेशन नही हो सकेगा।" जमनालालजी ने कहा, "अच्छी बात है, आप क्लोरोफार्म का इन्तजाम रखिये और आपरेशन बगैर क्लोरोफार्म के शुरू कर दीजिए। अगर मैं न सह सका, तो आप बेशक क्लोरोफार्म दे दीजिएगा।" डाक्टर को यह बात पसन्द तो नही थी, लेकिन उसने सोचा कि यह अपने-आप ही क्लोरोफार्म मागने लगेंगे। इतना दर्द सहना कोई खेल थोडे ही है।

मुश्किल था। लेकिन जमनालालजी ने चू भी नही किया। डाक्टर दग रह गया। वोला, "ऐसा सहनेवाला आज तक नही देखा। मुझे तो विश्वास नही था कि यह आपरेशन क्लोरोफार्म के विना भी हो सकता है।" ऐसी थी जमनालालजी की सहनशक्ति और धीरज।

इसी तरह का दूसरा प्रसग उस समय का है, जव वह जयपुर मे नजरवद थे। उनके पैर मे जोरो का दर्द हुआ। विजली का इलाज किया गया। डाक्टर ने कहा, 'मैं विजली का प्रवाह तेज करता जाऊगा। यदि आप कुछ अधिक वर्दाश्त कर सके तो असर अच्छा होगा।" डाक्टर प्रवाह वढाता ही गया, मगर जमनालालजी कुछ नही वोले। पैर जलता रहा, यहा तक कि घाव हो गया। तव डाक्टर को पता चला कि इनका तो पैर ही जल गया। मगर जमनालालजी तो वर्दाश्त ही करते रहे।

ऊपर जिस आपरेशन की चर्चा आई है, जमनालालजी से पहले-पहल मैं उसी समय मिला। उस समय उनकी उम्र कुल सत्ताईस साल की थी। पर उसके पहले ही वह कई सार्वजनिक कार्य शुरू कर चुके थे और देश के अच्छे-से-अच्छे लोगो के सम्पर्क मे आ चुके थे। जहा कही जाते या किसी से मिलते तो वरावर यह कोशिश करते रहते कि किसी कार्यकर्त्ता से परिचय हो जाय। कोई नया कार्यकर्त्ता तैयार हो इसीकी तलाश मे रहते। आपरेशन के वक्त उन्हे कई दिन कलकत्ते मे रहना पडा। शाम को उनके पास कलकत्ते के मारवाडी युवको का जमघट लगता और अन्य लोग भी आते, जिनमे श्री अम्विकाप्रसादजी वाजपेयी, स्व० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी आदि प्रमुख थे। समाज-सुधार और राजनैतिक विषयो पर वाते होती रहती। वीच-वीच मे चतुर्वेदीजी के हास्य-विनोद के फव्वारे सवकी तवियत को तर कर देते और कलकत्ते के वागवाजार वाले नामी रसगुल्लो का स्वाद भी मिल जाता।

थोडे ही दिनो के वाद उन्नीस सौ सत्रह के वडे दिनो की छुट्टियो में श्रीमती एनी वेसेण्ट की अध्यक्षता में काग्रेस का अठाइसवा अधिवेशन हुआ। उसमे उस समय के 'कर्मवीर' गाधी भी आनेवाले थे। लोकमान्य के नाम की धूम थी। गाधीजी तो जमनालालजी के ही अतिथि थे।

उन दिनों वह काठियावाड़ी वेश-भूषा में रहते थे। वही बलदार पगड़ी और लम्बा अंगरखा, लेकिन जूते नदारद। हम लोगों को जमनालालजी ने गांधीजी से मिलाया। वैसे तो वहां का सारा काम हमीं लोगों के जिम्मे था। उस समय जिन्होंने जमनालालजी को गांधीजी का आतिथ्य करते देखा है, उन्हें याद है कि उस समय भी गांधीजी के साथ उनका सम्बन्ध कितना गहरा था और गांधीजी के प्रति उनकी श्रद्धा कितनी गहरी थी। बाद में तो गांधीजी 'महात्मा' हो गये और सारे देश के 'बापू' बन गये। जमनालालजी की विशेषता यह थी कि उन्होंने गांधीजी को पहले ही पहचान लिया था और अपने को उन्हें सौंप दिया।

सन् १९२० में लाला लाजपतरायजी के सभापतित्व में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ, जिसमें गांधीजी ने असहयोग का प्रस्ताव पेश किया। कांग्रेस के सभी पुराने महारथियों ने उस प्रस्ताव का जम कर विरोध किया, तो भी जमनालालजी गांधीजी के साथ थे। उनके कारण बड़ाबाजार के सभी लोग गांधीजी के पक्ष में रहे। उन दिनों आजकल की तरह प्रतिनिधियों का चुनाव तो होता नहीं था। इसलिए हम लोग बहुत बड़ी संख्या में प्रतिनिधि बन गये थे। हम लोग तो यही मानते रहे कि हमारे वोटों की बदौलत ही महात्माजी की जीत हुई। बंगाल के मुख्य नेता देशबन्धु चित्तरंजन दास, विपिनचन्द्र पाल, व्योमकेश चक्रवर्ती तथा महामना मालवीयजी महाराज और अन्य सभी धुरंधर नेताओं ने गांधीजी के प्रस्ताव का घोर विरोध किया। प्रस्ताव का एक अंश यह भी था कि सरकारी उपाधियां लौटा दी जायं। जमनालालजी ने तुरन्त अपनी 'रायबहादुर' की उपाधि छोड़ दी।

लोग जो देश के काम के लिए आगे आये है, उनके पास कमाई का कोई जरिया नही। न जाने इनके परिवार के लोगो पर क्या-क्या बीत रही होगी। इनके सिवा और भीं कितने ही ऐसे लोग होगे, जो अपनी कमाई छोडकर आन्दोलन मे शरीक होना चाहते होगे। लेकिन उनके सामने उनके स्त्री-बच्चो का सवाल होगा। उन्होने झट एक निधि खोली। दो लाख रुपये अपने पास से दिये और जो लोग अपना धन्धा छोडकर आन्दोलन मे पडे थे और जिनके परिवार के लोगो के लिए दूसरा कोई इन्तजाम नही था, उनकी सहायता की। उनको बराबर यह चिन्ता रहती थी कि देश और समाज के सेवको की तकलीफे किस तरह दूर हो सकती है और उनके कार्य के लिए सुविधाए किस तरह प्रस्तुत की जा सकती है। इसी विचार मे से बाद मे गाधी-सेवा-सघ की स्थापना हुई।

जमनालालजी के जिस विशेष गुण का मेरे मन पर गहरा असर पडा, वह है कार्यकर्त्ताओ के प्रति उनकी आस्था। १९३१ के गाधी-इर्विन-समझौते के बाद की बात है। देश मे चारो तरफ एक तरह से उल्लास, उत्साह और जोश की लहर-सी उठ रही थी। काग्रेस की जीत हुई। हमारा आन्दोलन सफल हो गया। इसी खुशी मे लोग मगन थे। लेकिन जमनालालजी को यह फिकर थी कि आन्दोलन की वजह से कितने कार्यकर्त्ता बीमार हो गये हैं ? सरकार की दमन-नीति के प्रहार से कितनी सस्थाए नष्ट हो गई है ? मार-पीट और गोलाबारी की बदौलत कितने आदमी अपग और अपाहिज हो गये है ? उन सबसे मिलना चाहिए। उन्हे दिलासा देकर उनकी मदद करनी चाहिए। गुजरात, बम्बई और वर्धा के आसपास के कार्यकर्त्ताओ से मिलने के बाद उन्होने बगाल आने का विचार किया। मुझे पत्र लिखा, 'फला तारीख को पहुच रहा हू। डाक्टर सुरेश बनर्जी और डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष से, जो अभय आश्रम के सभापति और मन्त्री है, मिलना है। सुरेशबाबू को जेल मे टी० बी० हो गई है, उनसे मिलने के लिए कुमिल्ला चलना है। दूसरे कार्यकर्त्ताओ से भी मिलना है। तुम्हे साथ चलना होगा।'

वह कलकत्ते आये। यहा के लोगो से मिले। जिन मारवाडी युवको

ने आन्दोलन मे भाग लिया था, उनसे वह वहुत प्रेम से मिले। उन्हे इस वात की विशेष चाह थी कि मारवाडी-समाज के लोग देश-सेवा मे ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा ले। वे कोरे व्यापारी ही न वने रहे। जमनालालजी युवको को वरावर यह प्रेरणा देते रहे।

हम डा० सुरेश वनर्जी से मिलने कुमिल्ला गये। सुरेशवावू को तो प्लास्टर आव पैरिस मे सुला रखा गया था। उठना-वैठना तो दूर, वह करवट भी नही वदल सकते थे। जमनालालजी सीधे उनके पास गये और उसी हालत मे उनके गले लिपट गये। सुरेशवावू वोले, "जमनालालजी, मैं क्या कहू ! आप इतनी दूर से खासकर मुझसे मिलने आये और जिस प्रेम से मुझे गले लगाया, उससे तो मेरी वीमारी दूर हुई-सी मालूम होती है। मैं अपने मे एक नया वल और स्फूर्ति अनुभव करता हूं।"

जमनालालजी कार्यकर्त्ताओ की तकलीफ समझ सकते थे। उनके त्याग और देश-प्रेम की कद्र करते थे। वह कार्यकर्त्ताओ के प्रशसक ही नही, वल्कि उनके भक्त थे। वह जव उनकी सहायता करते थे तो यह नही मानते थे कि मैंने कोई अहसान किया है, वल्कि यह मानते थे कि ऐसे पुण्यवान व्यक्तियो की सेवा का सुअवसर मुझे मिला, यह मेरा अहोभाग्य है। उनकी निगाह मे कार्यकर्त्ताओ का स्थान वहुत ऊचा था। वह उनको अपने घर के लोगो से ज्यादा प्रेम करते थे। अपने साथ काम करनेवाले या अपने सम्पर्क मे आनेवाले देशसेवको के दिल मे अपने वर्ताव से, अपनी भावना से और अपनी कामो से उन्होने यह विश्वास पैदा कर दिया था कि यदि किसी कार्यकर्त्ता को कोई शारीरिक, आर्थिक, पारिवारिक या सामाजिक तकलीफ हो, तो जमनालालजी उनकी हर तरह से मदद करेंगे। और यही कारण है कि जमनालालजी के चले जाने से हजारो लोगों ने यह अनुभव किया कि उनका एक जवरदस्त सहारा जाता रहा।

भी इनकी सस्थाओ से मेरा सम्बन्ध नही था । जमनालालजी ने वहा के कार्यकर्त्ताओ तथा अभय-आश्रम के आजीवन सदस्यो के बारे मे जो कुछ वहा बताया गया, वह अद्भुत था । उनका चरित्र इतना उज्ज्वल था, इतना त्यागमय था कि आज भी वह दृश्य मेरी आखो के सामने से नही हटता ।

थोडे मे उनके कहने का आशय यह था कि यह सस्था १९२१ के आन्दोलन के बाद स्थापित हुई । डा० सुरेश बनर्जी और डा० प्रफुल्ल घोष ने उसकी स्थापना की । इसके उनतीस आजीवन सदस्य है, जिनमे से अट्ठाईस अविवाहित है । देश के आजाद होने के पहले विवाह न करने का उनका प्रण है । जो कुवारे है, वे केवल अपने व्यक्तिगत खर्च के लिए पन्द्रह रुपये मासिक लेते है । इसमे भोजन, वस्त्र, डाक तथा अन्य खर्च जो उनका अपना खर्च कहा जा सकता है, शामिल है । एक सदस्य, जो विवाहित है, वह पचास रुपया लेते है । वह एक कालेज मे एक अच्छे प्रोफेसर थे । वेतन भी अच्छा पाते थे । सुरेशबाबू और प्रफुल्लबाबू तो हजार-हजार, आठ-आठ सौ की सरकारी नौकरिया छोडकर सस्था मे आये है । अन्य सभी सदस्य डाक्टर, वकील या वैज्ञानिक है और विश्व-विद्यालयो की उच्च परीक्षाए पास है । डा० नृपेन बोस, जो एक अच्छे डाक्टर है, आश्रम के दवाखाने और अस्पताल मे वहा के एक सौ दस कार्यकर्त्ताओ की सेवा करते है । उसके बाद डाक्टरी का पेशा करते है, जिसमे करीब बारह सौ रुपया मासिक की आमदनी होती है । वह सब आश्रम को ही जाती है । वह आश्रम के सदस्यो का नियत वेतन केवल पन्द्रह रुपया ही लेते है ।

जमनालालजी बोले, "बतलाओ, अगर ऐसे लोगो से मिलने या उनके दर्शन करने न आऊ तो किससे मिलने आऊ ? यही लोग तो आज गाधीजी की भावना और विचारो के अनुसार उनके कामो को चला रहे है । तुम्हारे बगाल मे आज जो खादी का काम हो रहा है, इस आन्दोलन मे जितना कुछ काम हो सका है, वह इन सबकी या ऐसे ही दूसरे लोगो की मेहनत का फल है ।"

इसी तरह वह दूसरी जगह के कार्यकर्त्ताओ से, जिन्हे उस आन्दोलन

मे तकलीफ हुई थी, उन सबसे मिलने गये। श्रीहट्ट के श्री धीरेन्द्रनाथ दास तथा ढाका की श्री आशालता सेन के बारे मे सुना था कि उन्हे बडी तकलीफ सहनी पडी। आशालता का आश्रम जला दिया गया था। धीरेन्द्रबाबू पर पुलिस की लाठियो की बहुत मार पडी थी। उन्हे तुरन्त तार देकर बुलाया। उनसे बडे प्रेम और आदर से मिले और उनके आश्रम के लिए रुपयो का इन्तजाम करने का भार मुझपर सौंपा।

ऐसे-ऐसे न मालूम कितने उदाहरण आज मेरी आखो के सामने नाच रहे है। उनके परिवार की बाते, उनकी व्यक्तिगत बाते, उनका रहन-सहन, तौर-तरीका, कर्मनिष्ठा, त्याग, जानकीबहन के साथ उनका सबध, वर्धा मे आनेवाले हजारो मेहमानो की आवभगत, आत्मीयता आदि, उनके जीवन के सभी पहलुओ पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है।

एक बार नागपुर जेल मे वह बीमार हुए और अवधि से पहले छोड दिये गए, तो स्वभावत उनसे मिलने की इच्छा हुई। पर मैं कभी उनसे बिना पूछे या बिना बुलाये उनके पास नही गया क्योकि वह बराबर हर बार याद कर लिया करते थे। तो भी आल इण्डिया काग्रेस कमेटी की बैठक के पहले मैं उनके दर्शन नही कर सका। जनवरी मे जब मैं वर्धा पहुचा, तो वह सामने ही मिले। मैंने उन्हे इतना दुबला-पतला पहले कभी नही देखा था। उनके शरीर की हालत देखकर मैं सहम गया। मैने कहा, "आप तो बहुत कमजोर हो गये है।" उन्होने कहा, "कमजोर नहीं, दुबला हो गया हू। कमजोर तो दूर, मैं तो पहले से भी ज्यादा शक्ति महसूस करता हू।"

बौछार आयगी । शायद पानी चूने भी लगेगा । उन्होने मारवाडी बोली मे कहा, "मै तो जाट जन्मा था और जाट ही मरना चाहता हू । मुझे वर्षा का क्या डर है ! यहा तो तुम-जैसे नवावो को तकलीफ हो सकती है ।" (मुझे वह मजाक मे 'नवाव' कहा करते थे ।)

मुझे क्या पता था कि पाच-दस दिन मे ही यह निधि यों लुट जायगी ! इन बीस दिनो मे कितनी बाते हुई । हम लोग चार वजे से पहले उठ जाते थे । प्रार्थना के बाद आपस की चर्चा होती थी, जिसमे अपनी-अपनी गलतिया सोची जाती थी । उन्होने कई बाते बताई, जिनका वर्णन इस समय नही किया जा सकता । मैंने पोद्दारजी से कहा, "पोद्दारजी ! जमनालालजी मे परिवर्तन मालूम पडता है । अब वह निरन्तर अन्तर्मुख होकर आत्म-निरीक्षण मे रत रहते हैं ।" महावीरप्रसादजी बोले, "सीताराम ! क्या कहू, इनके प्रति मेरी श्रद्धा तो वेग से बढ रही है ।" हमे क्या मालूम था कि वह इतनी जल्दी इस तरह अचानक हम लोगो से विदा हो जायगे ! मैं और पोद्दारजी पाच फरवरी को ही तो वर्धा से गये थे । यदि उनके कुछ भी तकलीफ होती, हमे जरा-सा भी अन्देशा होता, तो हम क्यो इस तरह अलग रह जाते ?

पर जमनालालजी का तो कहना था कि मैं किसीकी भी सेवा लिये विना मरना चाहता हूं । मेरे एक घनिष्ठ मित्र की जब हृदय-गति रुकने से मृत्यु हो गई थी, उस वक्त जमनालालजी ने मुझे लिखा था, "ऐसी मृत्यु तो भाग्यशाली व्यक्तियो की होती है । वह ईश्वर की कृपा का लक्षण है । आदमी इस कमरे मे मरे, तो बगल के कमरेवाले को बाद मे पता चले, ऐसी मृत्यु होनी चाहिए ।"

जमनालालजी की मुराद पूरी हुई । उनके जैसी मृत्यु तो सचमुच ईश्वर की कृपा का ही लक्षण है । वह तो अमर हो गये । हजारो हृदय मे उनकी स्मृतिया सदा हरी-भरी रहेगी ।

जमनालालजी बीस वर्ष पहले से काग्रेस वर्किंग कमेटी के मेम्बर थे तथा उन्होने देश की बडी-बडी सस्थाओ का—जैसे चर्खा-सघ, गाधी-सेवा-सघ आदि का—सगठन और सचालन किया । ये बाते जमना-लालजी की महत्ता की सूचक हो सकती हैं, पर उनकी सच्ची महत्ता का

पता तो उनके नजदीक जाने पर ही मिल सकता था और उनका प्रेमी हृदय, उनकी विशालता, उनकी कार्य-शक्ति तथा विचार और आचार की एकता का पता तो उनको नजदीक से देखने से ही मिल सकता था। एक दिन की बात है। वर्धा के गाधी-चौक मे सभा थी। जमनालालजी सभापति थे। जानकीबहन ने भी व्याख्यान दिया और सभापतिजी को तो देना ही था। लौटते समय रास्ते मे मैंने कहा, "आपसे तो जानकीबहन का व्याख्यान ज्यादा अच्छा हुआ।" वह बोले, "यह तो ठीक है, तुम्हारा और उनका तो अच्छा होगा ही। मुझे तो इस बात की चिन्ता थी कि मैं कोई ऐसी बात न कह जाऊ जिसको जीवन मे उतार नही सकू या कर नही पाऊ, और तुम लोग शायद यह सोचते होगे कि हमारा व्याख्यान सुननेवालो को अच्छा लगना चाहिए।" वह हर समय यह सोचते थे कि मेरा जीवन, बाहरी और भीतरी, एक हो। वह समाज-सुधार की वही बाते कहते, जो वह खुद अपने घर मे करते। जानकीबहन के पर्दा छोडने के पहले उन्होने पर्दे के विरुद्ध कुछ नही कहा। जानकीबहन तथा अपने परिवार के अन्य लोगो की राष्ट्रीय जीवन की तैयारी कराने के लिए वह पूज्य गाधीजी के पास साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम मे सपरिवार जाकर रहे और बडी लड़की कमला का विवाह आश्रम मे ही किया। सन् १९२७ मे उन्होने अपना प्रसिद्ध लक्ष्मीनारायणजी का मन्दिर हरिजनो के लिए खोला। वह क्रान्तिकारी मनोवृत्ति के आदमी थे; पर वह उस क्रान्ति को अपने घर से, अपने जीवन से शुरू करते थे। सचमुच उन्होने अपने जीवन मे क्रान्ति-मूलक सुधार किये थे।

वह उग्र थे अपने प्रति और कोमल थे दूसरो के प्रति। वह अपनी छोटी-सी कमजोरी को खोजते थे और उसको हटाने का जोरदार प्रयत्न करते थे। पर दूसरो के गुणो को ही देखते थे। उनके गुणो की प्रशसा करते थे। उन्होने किसी के अवगुणो को देखा तो उसकी अवहेलना की। मैने उनके मुह से किसी की निन्दा नही सुनी। वह केवल बडी-बडी बातो मे ही नही उलझते थे। वह तो हर चीज मे आनन्द लेते थे। उनके पास कितने आदमी आते और उन सबके नाना प्रकार के सवाल रहते, जिनमे से कई-कई तो बहुत ही कठिन हुआ करते, जिनका सुल-

झाना तो दूर, सुनने से घबराहट होती, पर वह अपने सहज धीरज से उन्हे सुनते और उन आनेवाले सज्जनो की सहायता करते। यह सहायता केवल आर्थिक नही, बहुत तरह की होती थी। उन्होने न मालूम कितने परिवारो को डूबने से बचाया है, कितने कार्यकर्त्ताओ की कितनी समस्याए हल की है। आर्थिक समस्या तो रुपये देकर हल की जा सकती है, देनेवाला उदार और भला कहला सकता है, पर कही स्त्री-पुरुष का झगडा है, कही बाप-बेटे का, कही सैद्धान्तिक कारणो से परस्पर झगडा है, तो कही बाप-बेटी मे विवाह की समस्या या अन्य चीज को लेकर ठीक नही हो रहा है। साबरमती-आश्रम टूटने के पहले महात्माजी काग्रेस के समय से पन्द्रह-बीस दिन पहले बर्धा-सत्याग्रह आश्रम मे आ जाया करते थे और वही से काग्रेस मे जाते। उन दिनो वहा अन्य कार्यकर्त्ता भी आ जाते। गाधी-सेवा-सघ, चर्खा-सघ आदि की मीटिंगे भी हो जाती। इतने बड़े सत्सग के लालच मे मैं भी वर्धा चला जाता या जमनालालजी बुला लेते थे। सन् १९२९ की लाहौर काग्रेस के बीस दिन पहले जब मैं वर्धा गया, उस समय की एक घटना है। रात मे ग्यारह बजे करीब पन्द्रह-सोलह वर्ष की एक लडकी उनके पास आई। पूज्य बापूजी ने उसे भेजा था। सुबह की गाडी से लडकी के माता-पिता भी आये। बात यह थी कि माता-पिता लडकी का विवाह करना चाहते थे। लडकी विवाह नही करना चाहती थी। वह महात्माजी का 'नवजीवन' तथा अन्य पुस्तके पढा करती और सेवा करना या पढना चाहती थी। माता-पिता जबर्दस्ती विवाह की बाते करने लगे, तो लडकी गाधीजी के पास भाग आयी। जवान लडकी, रात मे गाधीजी उसे कहा रखते और फिर यह समस्या तो आखिर जमनालालजी को ही हल करनी थी। इसलिए महात्माजी ने रात मे ही उसे जमनालालजी के पास भेज दिया। लडकी के माता-पिता सख्त नाराज थे। वे गुस्से मे भरे पडे थे। लडकी कहती थी, "मैं आपके घर नही जाऊगी, मै गाधीजी के पास आश्रम मे रहूगी और अपना सारा जीवन वही बिताऊगी।" पर गाधीजी इस तरह माता-पिता को नाराज करके लडकी को कैसे रखे! मामला बहुत जटिल था, पर जमनालालजी ने इस मामले को

ऐसी चतुराई से सुलझाया कि लडकी के माता-पिता बाग-बाग हो गये और स्वय जाकर लडकी को साबरमती-आश्रम मे भर्ती कर आये। लडकी वहा कई वर्षो रही। १९३० के आन्दोलन मे उसने खूब काम किया। जेल गई, आश्रम के नियमो का अच्छी तरह से पालन किया। इस प्रकार के अनेक उदाहरण है। जमनालालजी ने अपने स्नेह-भरे हृदय से कई लोगो को मोह लिया और उनकी बुराई को भलाई मे बदल दिया। जिनका पतन होनेवाला था, उनका उत्थान हो गया, वे सच्चे देश-सेवक बन गये। ऐसे कितने ही काम जमनालालजी से होते रहते थे।

गाधीजी के विचारो को जमनालालजी ने बडी श्रद्धा से अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था। वह बराबर अन्तर्मुख होकर सोचा करते थे। कुछ समय पहले की बात है। वर्धा मे चक्षु-सुधार यज्ञ था। जमनालालजी इसे अपने सीधे-सादे शब्दो मे 'आखो का मेला' कहते थे, जिससे वे देहाती लोग, जिनकी आखे ठीक करनी थी और जिनकी चिन्ता उनको थी, इस यज्ञ का मतलब समझ सके। इस समय एक घटना हुई। मैंने, भाई महावीरप्रसादजी पोद्दार और श्रीरामकुमारजी भुवालका ने इस विषय मे जमनालालजी से कुछ बाते कही। उस समय तो वह कुछ नही बोले। गोपुरी की झोपडी मे हम लोगो ने सुबह चार बजे प्रार्थना की। इसके बाद बराबर कुछ आपसी चर्चा होती, तो जमनालालजी पोद्दारजी से और मुझसे कहा करते कि आप लोगो की जो विचार-धारा है, वह ठीक नही है। सार्वजनिक सेवक को यदि सेवा करनी है और उसे अपना सेवा-क्षेत्र बढाना है, तो उसको शक्तिशाली नये-नये सेवको को लाना होगा और उन सेवको की खोज करनी होगी, जो किसी भी अच्छे काम की ताकत रखते है।

खुलासा लिखा नही जा सकता, क्योकि वह व्यक्तिगत बात थी, पर सचमुच हमपर उनकी बात का बहुत असर हुआ था और हमने उसे अच्छी तरह से सोचा तो मालूम हुआ कि दरअसल हमारी भूल थी। वह हर चीज मे गहरे उतरते थे और यही कारण है कि वह इतनी सेवा कर सके और हजारो के हृदय का प्यार पा सके।

५ : महादेवभाई

पूज्य गाधीजी के हिन्दुस्तान मे आने के बाद शायद सबसे पुराने और सबसे ज्यादा उनके साथ रहनेवाले श्री महादेवभाई थे। इस विषय मे एक मनोरजक घटना मुझे याद आ रही है। सन् १९३७ के दिसम्बर की बात है। गाधीजी की तबीयत खराब थी—यानी ब्लड-प्रेशर की शिकायत दूर नही हो रही थी। सेवाग्राम की सर्दी उन्हे बर्दाश्त नही हो रही थी, पर वह सेवाग्राम छोडना नही चाहते थे। डा० जीवराज मेहता ने उन्हे किसी तरह बम्बई आने के लिए राजी किया, और वह जुहू पर श्री रामेश्वरजी बिडला के मकान मे आकर रहने लगे। बगल मे श्री जमनालालजी की झोपडी थी, जिसमे हम लोग रहते थे। श्री पेरिन बेन कैप्टन (दादाभाई नौरोजी की पोती) ने एक दिन गाधीजी से कहा, "बापूजी, आपको एक मजा दिखाऊ, यदि आप आज्ञा दे।" गाधीजी ने कहा, "हा-हा, जरूर दिखाओ।" वह बोली, "भोलानाथ नाम का एक बैल आया है, वह आपसे मिलना चाहता है।" बापूजी ने कहा, "जरूर मिलाओ।"

गाधीजी जहा रहते थे, वही वर्किंग कमेटी की मीटिंग उनके साथ-साथ चलाती थी। इसलिए उन दिनो भी वर्किंग कमेटी की मीटिंग चल रही थी। पेरिनबेन ने पूछा, "भोलानाथ को किस समय लाऊ ?" बापूजी बोले, "वर्किंग कमेटी की मीटिंग खत्म होने के बाद चार बजे।" पेरिनबेन

ने कहा कि तव तो सवसे मुलाकात हो जायगी। भोलानाथ आयगा, इसकी खवर तुरत हमारी झोपडी मे भी आ गई। गाधीजी से उसके मिलने का समय चार वजे का था, पर उसकी सवारी तो दो वजे ही पहुच गई। जव हम लोगो को मालूम हुआ कि भोलानाथ आ रहा है, तो मैं जानकीवहन के साथ उसे देखने गया। एक सुन्दर-सा वैल था, जो कद का थोडा नाटा, रग सफेद, छोटे-छोटे सीग, चमकीली आखे, कौडियो का गलपटिया और छोटी घण्टियो का हार पहने वड़े ठाट से मोटर-लारी मे आ रहा था। साथ मे था उसका मालिक तथा एक और आदमी। हम लोग कोई दस-पन्द्रह आदमी जुट गये, जिनमे एक महादेव-भाई भी थे। सवसे ज्यादा विनोद तो महादेवभाई ने ही किया भोला-नाथ से, क्योकि वह स्वभाव से विनोदी थे। पहले-पहल भोलानाथ की हम लोगो से ही मुलाकात हुई। हमारी उसकी क्या वाते हुई, उन्हे लिख कर पाठको का समय लेना उचित नही होगा।

चार वजे गाधीजी के साथ वर्किंग कमेटी के सभी उपस्थित सदस्य भोलानाथ का विनोद देखने के लिए वाहर आये। सवसे पहले श्रीशरत्वावू ने भोलानाथ से प्रश्न किया कि भोलानाथ, काग्रेस का सभा-पति कौन है? भोलानाथ ने अपना सीग जवाहरलालजी के लगाया। सभी लोग जोर से हंसने लगे। ऐसे ही कई प्रश्न भोलानाथ से कभी किसीने तो कभी किसीने किये, जिनका वह ठीक-ठीक उत्तर देता रहा। गाधीजी ने भोलानाथ से पूछा कि वताओ भोलानाथ, मेरे सवसे पुराने साथी यहा कौन है? भोलानाथ मौलानासाहव (अवुल कलाम आजाद) के पास गया। वापूजी ने कहा कि भोलानाथ, अवकी वार तो तुमने भूल की। मेरा सवसे पुराना साथी तो महादेव है।

महादेवभाई तो उनके ऐसे ही साथी थे। वापूजी को बहुत लोग मिले, जिनमे महादेवभाई का अपना खास स्थान था। वापूजी को महादेवभाई पर अपने किसी भी काम का भार सौंपने मे झिझक नही होती थी। वापूजी का काम करना सहज नही था। उनके काम करनेवाले को उनकी भावनाओ, उनके विचारो और उनके काम करने की पद्धति का पूरा-पूरा ज्ञान न हो, तो वह वापूजी को सन्तोष नही करा सकता

था। महादेवभाई इतने वर्षो के सहवास से इस काम में ऐसे पटु हो गये थे कि उनके जैसे वही थे। फिर भी वहुत वार बापूजी की फटकार उन्हे भी सुनने पडती थी। गाधीजी लिखने मे, वोलने मे और प्रत्येक कामो मे बहुत ही संयम से काम लेते थे। उनके मन्त्री को भी वैसा ही होना चाहिए था। वह केवल उनके लिखने-पढने का काम ही नही करते थे। दरअसल गाधीजी के पास लिखने-पढने का काम तो गौण काम था, असल काम तो उनके पास अपना और साथियो का विकास करना ही था। महादेवभाई उनके ऐसे सेक्रेटरी थे, हमाल (वोझा ढोनेवाले) से लेकर उनके बडे-से-बडे बौद्धिक काम खूबी के साथ सम्भाला करते थे। गाधीजी अपनी भाषा मे कामा या फुलस्टाफ की भूल भी वर्दाश्त नही कर सकते थे। पर वह अपने वडे-वडे मजमून भी महादेवभाई पर छोड देते थे। महादेवभाई की भाषा और शैली तो ऐसी हो गई थी कि कई वार लोग समझ ही नही पाते थे कि महादेवभाई का लिखा है या गाधीजी का। वापूजी के व्याख्यानो को महादेवभाई जिस तरह लिख लिया करते थे, उनको पढने से ऐसा मालूम होता कि गाधीजी बोल रहे है।

८ अगस्त १९४२ को रात मे पूज्य बापूजी काग्रेस कमेटी की मीटिंग मे व्याख्यान दे रहे थे। वापूजी का यह व्याख्यान कितना महत्व-पूर्ण, कितना प्रभावशाली, कितना जिम्मेदारी से पूर्ण था, उसका ठीक-ठीक प्रकाशित होना भी उतना ही महत्व रखता था। इस काम को महादेवभाई से ज्यादा अच्छा तो कोई कर ही नही सकता था। महादेवभाई बैठे-वैठे नोट ले रहे थे। पर उनको वहा सुभीता नही था। कारण, वह बापूजी के पीछे बैठे थे। इसलिए वह जल्दी से मच से नीचे उतरकर मेरे पास मेज पर आ बैठे और वैठकर नोट लेने लगे। मैं ध्यान-पूर्वक गाधीजी का व्याख्यान सुन रहा था, पर अपने मन मे सोच रहा था कि जव 'हरिजन' मे महादेवभाई का लिखा नोट छपेगा, इसपर अच्छी तरह विचार करने का मौका मिलेगा। लेकिन सयोग दूसरा ही था। सुवह ही सव गिरफ्तार कर लिये गए।

१६ अगस्त को जव मैंने प्रेसीडेन्सी जेल मे सुना कि महादेवभाई

अब इस नश्वर लोक को छोडकर परलोक चले गये तो मुझे विश्वास नही हुआ।

महादेवभाई की चर्चा होते ही आज भी अनेक स्मृतिया जाग्रत हो उठती है। वर्षों से मैं महादेवभाई को अच्छी तरह जानता था। उनका लम्बा कद, ऊचा ललाट, गौर वर्ण, प्रतिभाशाली मस्तिष्क और स्नेह-भरा स्वभाव कौन भूल सकता है ?

६ : किशोरलालभाई

पूज्य किशोरलालभाई के अवसान से एक ऐसी वेदना का अनुभव हो रहा है, जो चिरस्थायी-सी लगती है। आज किशोरलालभाई जितने आत्मीय, जितने सन्त, जितने चिन्तक, जितने बुद्धिमान और जितने श्रद्धेय लग रहे हैं, उतने अपने जीवन-काल मे शायद कभी नही लगते थे। यह स्वाभाविक ही है कि जब मनुष्य नही रहता है तब उसका अभाव उसकी खूबियो को उघाड कर सामने रख देता है। पूज्य गाधीजी के कुटुम्ब के जो असख्य सदस्य देश के कोने-कोने मे बिखरे हुए, वे एक अजीब-सी दुख-भरी निराशा की स्थिति का अनुभव करते है। ऐसे लोगो के लिए किशोरलालभाई एक सहारा थे, एक पथ-प्रदर्शक थे, एक मित्र थे और थे एक सच्चे सलाहकार।

किशोरलालभाई के साथ क्या बातचीत करते समय और क्या पत्र-व्यवहार करते समय, ऐसा लगता था कि किसी अपने ही घर के आदमी के साथ बातें हो रही हैं। अपने पत्रो मे किशोरलालभाई साधारण सबधो को भी जिस आत्मीयता के साथ याद करते थे, वह मानो उनकी एक निजी हार्दिकता थी। उनका मन और मस्तिष्क जैसे हर बात मे अपनी एक विशिष्टता और निरालापन लिये था। उनके ठिगने कद और कृश शरीर पर एक बडा-सा सिर शरीर के अनुपात से कुछ

अजीब-सा लगता था, पर इस बडे मस्तिष्क मे जो सयत, सुलझे हुए, परिष्कृत और परिपक्व विचार रहते थे वे किशोरलालभाई की असाधारण मेधाशक्ति के परिचायक थे। यदि हम किशोरलालभाई के जीवन की साधना, तपस्या, सरलता आदि को एक बार अलग रखकर केवल उनकी निर्मल बुद्धि और स्वच्छ विचारो का ही पारायण करे तो भी उनका व्यक्तित्व विरल ही ठहरता है। उनकी जैसी निर्मल बुद्धि के आदमी खोजने पर भी शायद मुश्किल से ही मिलेंगे।

एक बार पूज्य बापूजी ने मालीकदा गाधी सेवा सघ की बैठक मे कहा था कि किशोरलालभाई को कुदरत ने जो कुशाग्र और निर्मल बुद्धि दी है वह कम लोगो को ही मिलती है। बापूजी जब कोई बडा कदम उठाने का विचार करते तो वैसा करने से पहले किशोरलालभाई की राय जरूर लिया करते थे और उनकी राय को बौद्धिक विचार की दृष्टि से सबसे ज्यादा महत्व की मानते थे। बापूजी की कई बातो से किशोरलालभाई का गहरा मतभेद रहा है और उन्होने सदा केवल अपनी आत्मा की ईमानदारी का पक्ष ही बापूजी के सामने रखा है। किशोरलालभाई का यह स्वभाव हो गया था कि जबतक उनका मानस किसी विचार अथवा कार्यपद्धति को पूरी तरह अगीकार नही करता था तबतक वह उसे स्वीकार नही करते थे। ऐसे अवसर उनके जीवन मे अनेक बार आये थे।

किशोरलालभाई के बडे भाई श्री नानाभाई, उनकी भाभी श्रीमती विजयालक्ष्मी तथा उनकी पुत्री ताराबहन और किशोरलालभाई की पत्नी श्रीमती गोमतीबहन को लेकर जो मशरूवाला परिवार था, उसे गुजरात का एक विशिष्ट और सुसस्कृत परिवार कहा जा सकता है। इस परिवार के सब-के-सब लोग त्यागमय, सेवाव्रती, विनम्र और प्रखर बुद्धि के रहे है। इस परिवार के सभी सदस्यो ने देश के लिए अपने सर्वस्व की आहुति दे दी। इसी परिवार के सदस्य के नाते किशोरलालभाई ने देश के लिए जो कुछ किया और दिया, उसपर सहज ही गर्व और गौरव का बोध होता है। जवानी के निकट पहुचने के बाद ही किशोरलालभाई गाधीजी के साथ चले आये थे। कानून की परीक्षा

पास करने के बाद उन्होने वकालत शुरू तो जरूर की, पर वहा उनका मन रमा नही और केवल पच्चीस वर्ष की अवस्था मे ही सब कुछ त्यागकर वह बापूजी के पास चले आये और उन्हीकी सदारत मे सारा जीवन देश और समाज की सेवा मे लगा दिया। बापूजी की सन्त भावना का प्रतिनिधित्व विनोबाजी करते थे, सास्कृतिक और कला भावना का प्रतिनिधित्व काकासाहब करते है, पर बापू के बौद्धिक विचारो और भावनाओ का प्रतिनिधित्व तो एकमात्र किशोरलालभाई ही करते थे। बापूजी की हत्या के बाद उनके द्वारा सस्थापित हरिजन पत्रो का जिस योग्यता, जिम्मेदारी और निर्भीकता के साथ उन्होंने सम्पादन किया और गाधीवादी विचारधारा की पूरी-पूरी रक्षा कीव ह किशोरलालभाई जैसे साधक और चिंतक का ही काम था।

अस्वस्थ और दुर्बल शरीर के रहते हुए भी किशोरलालभाई जीवन की अन्तिम घडी तक बराबर काम करते रहे। पूज्य जाजूजी बम्बई जा रहे थे, जिनके हाथ उन्होंने बम्बई के दो सज्जनो के नाम दो पत्र लिखवा कर दिये। पर दुर्भाग्यवश जब जाजूजी वर्धा स्टेशन पर पहुचे तबतक किशोरलालभाई इस लोक से कूच कर गये। इसके कुछ ही घण्टे पहले उन्होंने बाहर से आये दो सज्जनो से मुलाकात भी की और उनकी बातें सुनकर अपनी राय दी तथा 'हरिजन' के लिए लेख भी लिखवाया जिसके अन्तिम शब्द ध्यान देने लायक थे—"भारत के जागे हुए देहात अब किसी को अपना खून ज्यादा दिन तक नही पीने देंगे।" ये किशोरलालभाई के अन्तिम शब्द थे, जिनसे प्रकट है कि उनके जागरूक और चिन्तनशील मानस ने अन्तिम क्षण तक किस तरह की प्रतिक्रिया हो रही थी। इस प्रकार लगातार बीमार रहने के बावजूद पूर्णरूप से सेवा, त्याग और सयम का जीवन जीते हुए उन्होंने अपना शरीर छोडा। आज वह अचानक हमारे बीच से चले गये है। उनका अभाव ऐसा है, जिसकी पूर्ति नही हो सकती। अपने कार्यों और साहित्य के रूप मे किशोर-लालभाई उन लोगो के लिए, जो सत्य, न्याय और कर्तव्यनिष्ठा का जीवन जीना चाहते है, एक बहुत बडी विरासत छोड गये है।

किशोरलालभाई गुजराती के बडे ही उच्चकोटि के लेखक थे।

गाधीजी के विचारो के तो वह एक अद्वितीय और सही भाष्यकार माने जाते है। गाधीजी के जीवित रहते भी न सिर्फ किशोरलालभाई उनको समझाने मे सबसे आगे थे, बल्कि कई बार तो गाधीजी की उपस्थिति मे भी उनके विचारो को भलीभाति समझाने का काम किशोरलालभाई को ही करना पडा है। 'गाधी-विचार दोहन' मे उन्होने गाधीजी के विचारो का बडा ही सरल और सुबोध विवेचन किया है। (यह पुस्तक गाधीजी के जीवनकाल मे बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुकी थी और स्वय गाधीजी ने इसे खूब पसन्द किया था।) गाधीजी के सभी बुनियादी उसूलो और आदर्शो को लेकर किशोरलालभाई ने विस्तारपूर्वक व्याख्या की है। गाधीजी के विचारो और उद्देश्यो की तह तक उनकी निर्मल बुद्धि और पैनी दृष्टि किस सुगमता के साथ जा सकती थी और कितनी गहराई से वह उनपर विचार करते थे, यह उनके विवेचन को पढने पर ही मालूम होता है।

७ : काकासाहब कालेलकर

पूज्य काकासाहब का जीवन सदा सार्वजनिक जीवन रहा है। शिक्षा समाप्त करके वह विश्वविद्यालय से बाहर आये, तब से उनका जीवन सदा जन-कल्याण की भावना से प्रेरित रहा। तरुणाई के उषाकाल मे वह हिमालय की यात्रा पर नाना प्रकार की भावनाओ से प्रेरित हो निकल पडे थे। इसके बाद गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की विश्व-प्रेम की भावना और साहित्य-साधना से आकर्पित हो वह विश्वभारती, शातिनिकेतन आ गये। इस बीच पूज्य गाधीजी दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह मे सफल हो कर स्वदेश लौट आये। गाधीजी भी गुरुदेव और शातिनिकेतन आश्रम के प्रति आकर्पित थे। काकासाहब को तो काम करना था। सोचा, गुरुदेव के आश्रम मे ही काम करे। गाधीजी दक्षिण अफ्रीका के अपने साथियो के

मग शांतिनिकेतन मे आकर रहे और उन्होने वहा के कामो को देखा।

शान्तिनिकेतन म काकासाहब का गाधीजी से प्रत्यक्ष परिचय हुआ। गाधीजी के विचारो और कामो के बारे मे उनके मन मे श्रद्धा जगी और वह गाधीजी के साथ हो गये। गाधीजी ने तय किया कि स्वतत्र आश्रम बनाकर ही काम करना ठीक होगा। तब से काकासाहब गाधीजी के साथ ही रहे। यह शायद १९१६ की बात है। पचास वर्ष से ऊपर का लम्बा समय गुजर गया, काकासाहब अपनी निष्ठा के साथ गाधीजी के विचारो और कार्यो को अपने जीवन का उद्देश्य बनाकर देश ही नही, विदेशो मे भी घूमते रहे है। गाधीजी की बाते और उनका जीवन-दर्शन उन्होने लोगो को समझाया। गाधीजी कहा करते थे "काका और बापा (ठक्कर बापा) के पैरो मे चक्कर है।" वह फिरते ही रहते है। ठक्कर बापा विदेशो मे नही गये, पर काकासाहब यूरोप, अमरीका, दक्षिण अफ्रीका, जापान आदि दुनिया के अनेक देशो मे गये और गाधीजी की बाते लोगो को समझाई। काकासाहब का जीवन, ज्ञान और कर्म अत्यन्त व्यापक है।

सौंधी महक और गमक को भूलने नही देते ।

काकासाहब सत्यनिष्ठा के साथ जीवन के इतने लम्बे समय तक एक ही साधना मे लगे हुए है । यह साधना भारत की सेवा की, लोकमाता की, भारतमाता की, जो चाहे कह लीजिए, सेवा करना है ।

सन् १९४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह मे गाधीजी ने सबसे पहले दो सत्याग्रही चुने थे । जवाहरलालजी को राजनैतिक प्रतिनिधि के रूप मे और विनोबा को आध्यात्मिक प्रतिनिधि के रूप मे । पर काकासाहब तो उनकी साहित्यिक और कलात्मक प्रवृत्तियो के प्रतिनिधि ठहरे । जीवन मे श्रद्धा से ही सौदर्य-बोध और कलात्मक प्रवृत्ति बढती है । काकासाहब ने अपने साहित्य मे इस सौदर्य बोध का हमे जो दर्शन कराया है, वह अपूर्व है । जीवन का सहज सौदर्य, उसका आनन्द, उन्होने हमे बताया है । हमारी नदियो, तीर्थो और सस्कृति का आत्मीय माहात्म्य उन्होने बडी सहजता के साथ उजागर किया है । 'हिमालय-यात्रा' इसी सौदर्य-बोध की अभिव्यक्ति है । प्रेरणाप्रद और सौदर्य-बोध वाले साहित्य की रचना करनेवाले सच्चे साहित्यकार हमारे देश मे इने-गिने ही है । इन इने-गिनो मे काकासाहब का विशेष स्थान है । काकासाहब के सम्पर्क मे जो लोग आये है, उनके ज्ञान और कार्यो से प्रभावित होकर उनके साथ रहे है, वे हमेशा यह अनुभव करते है कि किसी विशेष व्यक्ति से हमारा सम्बन्ध है ।

काकासाहब सस्कृत, अग्रेजी, मराठी, गुजराती और हिन्दी का अच्छे-से-अच्छा ज्ञान रखते है । उनका हिन्दी गद्य हिन्दी के सकीर्ण समर्थको को नही भा सकता, पर जो रसज्ञ है, वे जानते हैं कि उनका हिन्दी गद्य कितना सरस और प्रेमल है । उनकी मातृभाषा मराठी है, पर उन्होने अपने साहित्य के लिए गुजराती को चुना और अच्छे-से-अच्छे ग्रथो से उसके साहित्य-भडार को भरा है । जबसे बापू ने उनको राष्ट्रभाषा प्रचार का काम सौपा, तबसे वह हिन्दी मे खूब लिखने लगे है । काकासाहब के जीवन के अनेक अगो मे पिछले तीस वर्षो से राष्ट्रभाषा का काम प्रमुख रहा है । दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की तरह काकासाहब के प्रयत्न से पूर्व भारत मे राष्ट्रभाषा प्रचार सभा

की स्थापना हुई और उसने बंगाल, असम और उडीसा मे हिन्दी प्रचार का बहुत काम किया। पर बाद मे नाना प्रकार के मत-मतान्तरो के कारण काकासाहब इस सभा या राष्ट्रभाषा-प्रचार-सभा से अलग हो गये और हिन्दुस्तानी के प्रचार का काम पूज्य बापूजी की राय से करने लगे। काकासाहब जो भाषा लिखते है, जिस भाषा का प्रचार करते है, उसको चाहे कुछ कहे, वह हमारी राष्ट्रभाषा ही है। इतने वर्ष स्वाधीनता का उपभोग करने के बाद भी परायी भाषा के प्रति आसक्ति को देखकर काकासाहब निश्चय ही कुछ क्षणो के लिए दुखित होते है, पर मैंने देखा है कि इतनी बडी उम्र में भी उनको निराशा छू तक नही गई है। पिछले दिनो उन्होने बातचीत मे कहा कि "मैंने सोचा, अब एक ही जगह पर बैठकर लिखने-पढने का काम करूगा और जिस दिन मेरा जन्मदिन था, उस दिन इस निश्चय की घोषणा करनेवाला था, पर जन्म के दिन अचानक ऐसा लगा कि यह निश्चय क्यो न करू कि जब तक जीना है तबतक बैठूगा नही, विश्राम नही करूगा। घूमूगा-फिरूगा, लिखता रहूंगा, काम करता रहूगा। म आज भी किसी दिन मे अपनी जिम्मेदारी कम नही मानता, काम करने के दायित्व से डरता नही, भागता नही। यही मुझे अच्छा लगता ह।"

पैदा हुआ है। उनको सतरा और केला छीलते हुए देखना भी एक अनुभव है। छीलने के ढग मे भी उनकी आतरिक कोमलता और कलात्मकता छिपी नही रहती।

८ : कृष्णदास जाजू

भारतीय समाज मे शिक्षा और सुधार का कार्य राजा राममोहन राय से शुरू हुआ। ब्रह्म समाज की स्थापना को बगाल मे समाज-सुधार का प्रथम प्रयास माना जाता है। इसी प्रकार भारत के अन्यान्य समाजो मे समाज-सुधार के आन्दोलन धीरे-धीरे शुरू हुए। वास्तव मे ये सुधार केवल समाज-सुधार नही थे, उनके पीछे राष्ट्रीय उत्थान की भावना थी, जो अनेक रूपो मे परिस्थिति की अनुकूलता-प्रतिकूलता मे पल्लवित हो रही थी। इसी सदर्भ मे बहुत विलम्ब से मारवाडी समाज मे भी सुधार की भावना जगी और वह अनेक सघर्षो से गुजरते हुए उन्नत होती गई। इस प्रक्रिया मे हम पूज्य कृष्णदासजी जाजू और जमनालालजी को बहुत आदर और श्रद्धा भाव से स्मरण करते है। जमनालालजी ने भी प्रथम प्रेरणा जाजूजी के सहवास, सहयोग और एक प्रकार से पथ-प्रदर्शन मे प्राप्त की। जमनालालजी से मैंने बहुत पहले अनेक बार सुना कि जाजू जैसे सत पुरुष विरले ही होते है। माहेश्वरी समाज मे सुधार का आरम्भ करनेवाले जाजूजी ही थे। उनकी प्रेरणा से अनेक युवको ने शिक्षा प्राप्त की और देश-समाज के काम मे रस लेने लगे। श्री जाजूजी काम्पटी मे वकालत करते थे और सारे बरार मे नवयुवको के प्रेरणा-स्रोत थे। १९२१ मे पूज्य गाधीजी ने असहयोग आन्दोलन शुरू किया, तब उन्होने वकीलो से वकालत और विद्यार्थियो से कालेज छोडने को कहा। जाजूजी ने तुरन्त वकालत छोडकर सारा समय देश-सेवा मे लगाने का निश्चय किया। वकालत

करते हुए भी वह प्रामाणिकता से काम करने के कारण बहुत धन नहीं इकट्ठा कर सके। उनका जीवन इतना नियमित, सरल, सादा और मितव्ययितापूर्ण था कि उनको कभी आर्थिक चिन्ता हुई ही नहीं। जितना कुछ होता उसको बहुत किफायतशाही के साथ संतोष के साथ खर्च कर जीवन-यापन करने में वह मेरी निगाह में एक अद्वितीय पुरुष थे।

वह कलकत्ता आते तब प्राय मेरे साथ रहने की कृपा करते। एक दिन कहने लगे, "यह गद्दे आदि बिछाने से क्या लाभ है? ये साफ नहीं होते, धोये नहीं जा सकते और खर्च भी बहुत होता है। उठाने और बिछाने में दिक्कत आती है। इनसे तो चटाई अच्छी, जो आसानी से बिछाई जा सकती है, उठाई जा सकती है और जगह को साफ-सुथरा रखा जा सकता है। ऐसा लगता है कि व्यर्थ के आडम्बरों में फंस कर हम व्यर्थ समय और शक्ति और धन का अपव्यय करते हैं। गांधीजी के रास्ते चलनेवालों को इन सब चीजों से बचना चाहिए। इसी प्रकार स्नान करने जाते तो अपने कपडे खुद अपने हाथ से धो लेते। वृद्धावस्था में भी आग्रह करने पर उन्होंने अपने कपडे किसी दूसरे से नहीं धुलवाये। खाने-पीने, मोटर आदि की सवारी में हमेशा इस बात का ख्याल करते कि कहीं हम मोह वश व्यर्थ की सुख-सुविधा तो नहीं ले रहे हैं।

हो प्रकट हो जाता है। सेवक को सामने-वाले की दिक्कतो का खयाल करना चाहिए। उस अधिकारी की दिक्कतो का अन्दाज आप नही कर सकते। उसके पास तो अधिकाश लोग कुछ-न-कुछ मागने के लिए ही जाते है, इसलिए ऐसा समझना गलत नही था।"

जाजूजी अपने को साधारण-से-साधारण स्थिति मे रखकर सामने वाले की स्थिति को समझने की कोशिश करते थे और इसके लिए उन्हे विशेष प्रकार का कोई प्रयत्न नही करना पडता था। उन्होने साधना के द्वारा ऐसा स्वभाव भी प्राप्त कर लिया था। मान-सम्मान, पद, अधिकार की कभी इच्छा ही उन्हे नही हुई।

१९२८ की बात है। मैं वर्धा गया था। उस समय नागपुर म्युनिस्पैलिटी के चेयरमैन का चुनाव हो रहा था। डा० मुन्जे, अभ्यकर और श्री तावे, सी पी के बडे नेता थे। तावे तो सरकार के साथ हो गये, इसलिए उनका सार्वजनिक महत्व घट गया पर डा० मुन्जे और अभ्यकर मे बहुत सघर्ष था। सभी जानते है कि डा० मुन्जे हिन्दू भावापन्न थे और अभ्यकर काग्रेस के नेता थे। चेयरमैन के सघर्ष मे काग्रेस के पास ऐसा कोई भी आदमी नही था, जो डा० मुन्जे की पार्टी को हरा सके। जहातक मुझे याद है, ऐसा कहा गया कि यदि जाजूजी खडे हो तो वह निर्विरोध हो जायगे। डा० मुन्जे भी शायद उम्मीदवार खडा न न करे, इसलिए अभ्यकर जाजूजी के पास आये और उनसे आग्रह किया, पर जाजूजी राजी नही हुए। उन्होने कहा, "मुझे तो अधिकारो और पदो की राजनीति मे पडना ही नही है।" फिर बापूजी के पास बात गई और उनसे कहा गया कि वह जाजूजी को राजी करे। बापूजी ने जाजूजी से बात की। सयोग से मै पास बैठा था। मुझे पूरे शब्द याद नही, पर यह पक्का याद है कि बापूजी ने कहा कि काटो का ताज तुम पहन लो। जाजूजी ने कहा, "आपकी आज्ञा को टाल नही सकता, पर मेरी इस काम मे रुचि नही है और मैं इसको कर नही सकूगा। प्रयत्न करने पर भी मेरी पूरी शक्ति इस काम मे नही लग सकेगी। इसलिए न तो मैं अपने साथ ईमानदार रहूगा और न पद के साथ और मुझे मानसिक क्लेश होता रहेगा।" इस पर बापूजी ने कहा, "ठीक है, तब मैं तुमको इसके

लिए नही कहूंगा।"

आगे जाकर गाधीजी ने 'ग्रामोद्योग सघ' की स्थापना की तो उन्होंने गाधीजी की आज्ञा से 'ग्रामोद्योग सघ' का अध्यक्ष होना सहर्ष स्वीकार किया। इसके बाद 'चर्खासघ' के सभापति बने और जीवन-पर्यन्त रहे। हजारो खादी कार्यकर्त्ताओ के साथ उनका पारिवारिक सम्बन्ध जुडा। अधिकार, पद, प्रशसा आदि बातो से दूर रहकर सेवा के कामो मे जिस प्रकार से हो सका, पद-ग्रहण करके या ऐसे ही, वे काम करते रहे।

समाज-सुधार के कामो मे उन दिनो विलायत-यात्रा सुधार माना जाता था। वह विलायत-यात्रा के पक्ष मे रहे और उसके विरोध मे होने वाले आन्दोलन का उन्होंने सामना किया। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह का आन्दोलन उन दिनो बहुत जोरो से चला था, उसमे उनका खास हाथ और प्रेरणा थी। मारवाडी समाज मे पहला विधवा-विवाह सन् १९२६ मे हुआ और उसके विरोध मे प्रचड आन्दोलन मे लोगो को जात बाहर कर दिया गया तो जाजूजी ने विधवा-विवाह कराने वालो को बराबर पथ-निर्देश दिया और भारी मदद की। माहेश्वरी समाज मे डीडू माहेश्वरी-कोलवाल आन्दोलन बहुत ही बृहद् रूप मे चला था। इस आन्दोलन मे जाजूजी का समर्थन प्रगतिशील पार्टी को था और इससे माहेश्वरी समाज मे काफी हलचल के बाद डीडू और कोलवाल का प्रश्न सदा के लिए खत्म हो गया।

तरह रखो, उसीमे मुझे सुख मिलेगा।" उनके आगह पर उन्हे वहा से हटाना पडा। यह उनकी त्याग की, अभोग की और अपरिग्रह की अतिम साधना थी।

९ : ठक्करबापा

सन् १६३२ ई० मे पूज्य गाधीजी के प्रसिद्ध यरवदा जेल के उपवास के बाद हरिजनो की स्थिति सुधारने के उद्देश्य से 'हरिजन सेवक सघ' की स्थापना हुई। इसके सभापति श्री घनश्यामदासजी बिरला बनाये गए और मत्री ठक्करबापा। इसके पहले ठक्करबापा का नाम मेरे सामने नही आया था। स्वभावत ठक्करबापा के बारे मे जानने की इच्छा हुई। मालूम हुआ कि वह बहुत वर्षो से आदिम जातियो मे काम कर रहे है और मूक सेवक है, बापूजी के सिद्धान्तो और विचारो से प्रभावित है। कुछ ही दिनो बाद ठक्करबापा से साक्षात्कार भी हुआ। प्रथम दर्शन मे ही उनके प्रति श्रद्धा जगी और उनकी प्रामाणिकता, कार्यपटुता, परिश्रमशीलता और सादगीपूर्ण जीवन का मन पर गहरा प्रभाव पडा।

"वह मेरे मित्र भागीरथजी कानोडिया के यहा ठहरे थे। उन्होने कुछ तार भेजने के लिए दिये। तार लगा दिये गए तो उन्होने पूछा, "कितने पैसे लगे?" हमने कहा, पैसे तो लग गये। अब उसका हिसाब क्या? कहने लगे, "उसके पैसे लो। कितने लगे?" हम लोगो ने कहा, ठीक है, तो बोले, मै ऐसा नही कर सकता। पैसे पूरे लो। मैं उसे अपने हिसाब मे लिखूगा और उसकी रसीद साथ जोडूगा। यह सार्वजनिक काम है, सार्वजनिक पैसा है, एक-एक पैसे का हिसाब सस्था के पास ही नही देना है, भगवान के पास भी देना है। तुम लोग सस्था को जितनी इच्छा हो, सहायता कर सकते हो। मै उसकी रसीद दूगा, पैसा जमा करूगा।

मैं ऐसा नही करता कि इधर से दो रुपये खर्च हो गये उधर से पाच और उनका कोई हिसाब न रहा।" यह उनकी कार्य-पटुता और व्यवस्था का उदाहरण है। वह बहुत यात्राए करते थे और यात्राओ का खर्च भी कम-से-कम करते और नियमित रखते थे। उन्होने अपना जीवन इतना सादा और सरल बना लिया था कि उन्हे किसी प्रकार की विशेष व्यवस्था की आवश्यकता नही होती थी। जैसा मिलता था, वैसा ही सरकारी खाना खाकर अपना काम मजे मे चला लेते थे। उनका अपना निजी खर्च साधारण-से-साधारण कार्यकर्त्ता से कभी अधिक नही हुआ।

एक बार की बात है। वह मेरे घर ठहरे। भोजन करके बाहर गये तो कह गये कि शाम को छ बजे तक लौटूगा। हम लोग भी बाहर चले गये, घर मे एक नौकरानी, जो कपडा धोने का काम करती थी, वही रही। ठक्करबापा का काम जल्दी हो गया, इसलिए वह जल्दी लौट आये। नौकरानी से पूछा, "कपडे कहा सूखते है?" नौकरानी ने बताया छत पर। वह कपडे लाने छत पर गये। हम लोग छत पर कभी नही जाते थे, इसलिए सीढियो पर जाले लगे हुए थे। उन्होने सीढियो के जाले साफ किये और कपडे उतार कर लाये। उन दिनो हमारे घरों मे कपडो पर इस्तरी नही होती थी। यो ही हाथ से कपडो की सलवट निकालकर घडी कर लेते थे। ठक्करबापा ने जाले साफ करने के बाद अपने कपडो की हाथ से सलवट निकालकर घडी की। हम लोग शाम को लौटे तो कपडे ठीक किये हुए मिले।

एक बार घनश्यामदासजी ने बताया कि ठक्करबापा का कोट जगह-जगह से फटा हुआ था। उनसे कहा गया कि नया कोट बनवा लीजिए, फटा कोट बहुत बुरा लगता है। इसपर ठक्करबापा बोले, "इसका क्या बिगडा है? यह अभी तो कई वर्ष चल सकता है।" कई बार कहने पर भी उन्होंने नया कोट नही बनवाया। एक दिन घनश्यामदासजी ने उनकी अनुपस्थिति मे दर्जी को बुलवाकर पुराने कोट के माप का नया कोट बनवा दिया। कोट बनकर आया तो रात मे वह रख दिया गया और पुराना कोट हटा दिया गया। ठक्करबापा उठे। स्नान आदि करके कोट पहनने के लिए कोट खोजा तो नया कोट मिला। "मेरा कोट कहा है?" और वह उसकी खोज मे लग गये। कुछ देर खोज करने पर कोट नही मिला तो उनके ध्यान मे आया कि यह काम घनश्यामदासजी ने किया है। अब तो इसे ही पहनना होगा, क्योकि दूसरा कोट तो था नही। वह कम-से-कम कपडे रखते थे। किसी भी प्रकार की सग्रहवृत्ति उनमे न थी।

एक बार बात करते हुए मैंने उनसे कहा, "ठक्करबापा, आपकी सेवाओ से हरिजन और दूसरे उपेक्षित लोगो की जो सेवा हुई है, उससे भी अधिक पूज्य बापूजी की सेवा हुई है, क्योंकि इस प्रकार की लगन और निष्ठा से बापूजी का काम करनेवाले लोग कहा है!" "ठक्करबापा की आखें गीली हो गई, हृदय भर आया और आर्द्र स्वर मे बोले, "मै बापूजी की क्या सेवा कर सकता हू! बापूजी के उपकार और ऋण मुझपर अनन्त है। हम बापूजी को कुछ भी सतोप करा सके तो सेवा नही, अपने आपको सतोष दे सकते है। हमारा सौभाग्य है कि बापूजी की कृपा मुझे मिली।"

ठक्करबापा की छवि ओझल नही होती। अनेक लोग ठक्करबापा के सम्पर्क मे आये है और वे इसी प्रकार किसी-न-किसी रूप मे उनसे प्रभावित हुए और प्रभावित है।

स्वतंत्रता के सेनानी

१ : देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद

सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन के दिन थे। प्राय रोज सभाए रहती। इन सभाओ मे बगाल के नेता देशबन्धु चितरंजन-दास, विपिनचन्द्रपाल, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती आदि अनेक लोगो के व्याख्यान होते थे। वे जनता को विदेशी वस्त्रो का बहिष्कार, विद्यार्थियो को स्कूल, कालेज का बहिष्कार, वकीलो को अदालत, कचहरियो का बहिष्कार करने के लिए प्रेरित करते। इन सभाओ मे बड़ी उपस्थिति रहती और जोश का तो क्या कहना! नेताओ के व्याख्यान बड़े उत्तेजना-पूर्ण होते।

इस सिलसिले मे चितरंजन एवेन्यू के मुहम्मदअली पार्क (जो उन दिनो हालीडे पार्क के नाम से जाना जाता था) एक सभा मे खादी का साधारण कुर्ता और गाधी टोपी पहने, कधो पर एक खादी की मोटी-सी चादर रखे, निहायत सरल देहाती-से आदमी को मच पर बैठे देखा। सोचा, यह आदमी कौन है, जिसको देशबन्धु जैसे बड़े नेता के पास बैठाया गया है? फिर उनको व्याख्यान देने के लिए कहा गया और उन्होने अपना व्याख्यान हिन्दी मे दिया। साधारण शब्दावली, न कोई जोशफरोशी की बाते। साधारण भाव से उन्होने अपनी बाते कही, पर उन बातो को सुननेवालो पर ऐसा प्रभाव नजर आ रहा था कि वे उन मनोभावो, विचारो के साथ बँधे चले जा रहे हो। मैं

वहा के लोगो से पूछा कि यह देहाती-सा कौन आदमी इतना अच्छा वोलनेवाला है ? वताया गया कि यह राजेन्द्रवावू है और विहार के वहुत वडे वकील है। इन्होने महात्माजी के प्रभाव मे आकर अपनी वहुत वडी वकालत छोड दी और असहयोग आन्दोलन मे शरीक हो गये।

मैंने राजेन्द्रवावू को पहले-पहल इसी मीटिंग मे देखा था और उनका व्याख्यान सुना था। उनकी साफगोई और सच्चाई की वातो से मै इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उनकी मूर्ति आज भी मेरी आखो मे ज्यो-की-त्यो तैर रही है। इसके वाद की वाते वहुत हैं, पर मुझे वह मूर्ति विसरती नही। इसके वाद मैं उनके वारे मे अधिक जानने की कोशिश करता रहा और ज्यो-ज्यो उनके जीवन की झाकियो के दर्शन होते गये त्यो-त्यो उनके प्रति अगाध श्रद्धा वढती गई। सौभाग्य और सयोग की वात कि वहुत जल्दी ही उनसे परिचय और सम्वन्ध भी हो गया। जमनालालजी के कारण उनको वहुत नजदीक से देखने-सुनने का मौका मिला। प्राय ऐसा हुआ करता है कि वडे लोग दूर से जितने वडे और अच्छे लगते है उतने अच्छे नजदीक जाने पर नही लगते पर राजेन्द्रवावू को कोई जितना नजदीक से देखे, उतना ही उस पर ज्यादा प्रभाव पडे। उनके जीवन की विविया और प्रवृत्तियो का, उनकी सादगी, सरलता, सच्चाई और देशभक्ति का, सवका प्रभाव पडे विना नही रहता था।

सन् १९३४ मे विहार मे भयकर भूकम्प हुआ, जिसमे विहार की खास कर उत्तर विहार की, अपरिमित क्षति हुई। उन दिनो आदोलन चल रहा था। राजेन्द्रवावू तथा विहार के सारे नेता और कार्यकर्त्ता जेलो मे थे। सरकार ने महसूस किया कि विहार की इस दैवी विपत्ति के समय नेताओ को जेल मे रखकर इस सकट का सामना नही किया जा सकता। सव लोगो को मुक्त कर दिया गया। राजेन्द्रवावू पुराने दमे के रोगी थे। जेल मे यह रोग और भी वढ गया था। हम लोग उनसे मिलने गये तो उनके कृश शरीर और दमे के उठाव को देखकर वडा कप्ट हुआ। पर उनको अपने शरीर की कोई चिन्ता नही थी।

वह आतुर हो रहे थे कि आर्त्त और पीडित जनता को सहायता कैसे पहुचाई जाय। एक रिलीफ कमेटी बनी जिसका सभापति राजेन्द्रबाबू को बनाया गया। सारे देश मे बिहार के इन दुर्दिनो के लिए राजेन्द्र-बाबू की अपील का जादू का-सा असर हुआ। जगह-जगह से सहायता आने लगी। राजेन्द्रबाबू रात-दिन इस रिलीफ कमेटी मे अपना सारा समय लगाते रहे। इसका यह प्रभाव हुआ कि बिहार के तथा बाहर के हजारो कार्यकर्त्ता उस काम मे उत्साह, लगन और परिश्रम के साथ जुट गये और लाखो रुपयो की सहायता और सामान का ढेर लग गया। राजेन्द्र-बाबू को जिन्होने सदाकत आश्रम मे यह सब काम करते देखा है, कार्यकर्त्ताओ को जो प्रेरणा उनके द्वारा मिली है, उसका वर्णन नही किया जा सकता। वे कार्यकर्त्ता जो उनके निजी सम्पर्क मे आये है, वे ही इसका अनुभव कर सकते है।

इसके बाद बम्बई मे कांग्रेस का अधिवेशन होनेवाला था। सारे देश ने सर्वसम्मति से उनको उस समय के राष्ट्रपति के पद पर बैठाया। राजेन्द्रबाबू जेल से निकलकर बिहार के कामो मे लग गये थे फिर कांग्रेस के सभापति बने। इस प्रकार उनको जरा भी विश्राम नही मिला। कांग्रेस के सभापति बनते ही उन्होने सारे देश का दौरा किया। कांग्रेस के सभापति देश के हर हिस्से मे जाय, यह प्रथा राजेन्द्रबाबू ने प्रारम्भ की।

कोट पहना है, तो वह बोले, क्या कोट पहना है ? बहुत भद्दा लगता है। तुम तो कपडे सिर्फ शरीर ढकने लिए पहनते हो। मैंने सोचा कि कपडा शरीर ढकने के लिए ही तो पहना जाता है। यही बात मैंने पण्डितजी से भी कही। वह तो कपडो के बहुत शौकीन थे, बोले, 'कपडे सिर्फ तन ढाकने के लिए ही नही पहने जाते, आदमी अच्छा दीख सके, इसके लिए भी पहने जाते है।' आज बारह-तेरह वर्ष से यह कोट मेरे पास है और इसका अपना एक इतिहास है।" यह थी राजेन्द्र-बाबू की सादगी।

एक बार हम लोग पिलानी से शायद सीकर लौट रहे थे। चिडावा रास्ते मे पडा, जो पिलानी से शायद आठेक मील है। राजेन्द्रबाबू ने पूछा कि मातादीन यहा के रहनेवाले है न ? मैंने कहा, जी, यही के है। बोले, उनकी माता और स्त्री से मिलना अच्छा रहेगा। मातादीन तो जेल मे हैं। वह किसी आदोलन के कारण जेल मे थे। हम लोग खोजते-खोजते उनके घर पहुचे। राजेन्द्रबाबू के साथ थे उनके निजी सचिव और साथी मथुराबाबू। वे दोनो महिलाए इन लोगो को आया देखकर बाग-बाग हो गई। राजेन्द्रबाबू ने उनको धीरज बधाया तथा मातादीन के काम की सराहना करके उनको सतोष कराया। इसी प्रकार न जाने सारे भारत मे उन्होने कितने कार्यकर्त्ताओ और उनके परिवारो के दुख-सुख मे शामिल होकर उनको धीरज, साहस देकर उनका उत्साह बढाया।

राजेन्द्रबाबू जैसे वही थे। उनकी तुलना किससे की जाय, वह हमारे देश के गौरव थे। सादगी, सरलता, सहृदयता के प्रतीक थे। वह देश के और काग्रेस के अनन्य सेवक थे। सारी उम्र उन्होने देश की सेवा की। ऐसे लोगो से देश पवित्र होता है।

२ : लोकनेता जवाहरलाल

सन् १९१९ की अप्रैल मे अमृतसर मे जलियावाला बाग की दुखद दुर्घटना के कारण सारे भारत मे अग्रेजी राज्य के प्रति एक भयकर रोष और घृणा पैदा हो गई। इस घटना के बाद अग्रेजो ने पजाब मे बुरी तरह दमन किया। हर देश-भक्त के दिल मे पीडा थी। इस स्थिति का प्रतिकार करने की भावना प्रबल होती जा रही थी।

काग्रेस का अगला अधिवेशन पहले से ही अमृतसर मे होना तय हो चुका था। लेकिन जो स्थिति बन गई थी उसमे वहा अधिवेशन करना मुश्किल हो रहा था। नाना प्रकार के भय और शकाए थी। इस स्थिति मे प० मोतीलाल नेहरू तथा श्री चितरजनदास के तत्त्वावधान मे एक जाच कमेटी बनी। दोनो ही देश के बडे बैरिस्टर और उच्चकोटि के कानून ज्ञाता थे। इस कमेटी की रिपोर्ट प० मोतीलालजी और दास साहब ने बहुत परिश्रम करके तैयार की। इस रिपोर्ट मे उस समय के शासन के अत्याचार की कहानी जिस रूप मे सामने आई वह हृदय-द्रावक तो थी ही, इसने देश मे एक ऐसी प्रतिक्रिया पैदा हुई कि एक वर्ष के भीतर ही १९२१ मे असहयोग आन्दोलन शुरू हो गया। इस आन्दोलन मे जवाहरलालजी नेहरू का भाग बहुत ही महत्वपूर्ण था। यो तो प० मोतीलालजी ही उस समय बडे नेताओ मे थे, पर मोतीलालजी को इस आन्दोलन मे लाने का श्रेय भी वास्तव मे जवाहरलालजी को ही दिया जा सकता है। उसके बाद तो नेहरू-परिवार के बलिदान की कहानी अपनी सानी नही रखती। इस कुटुम्ब के छोटे-बडे, पुरुष और स्त्री जबतक देश स्वाधीन नही हुआ तबतक के लिए स्वाधीनता-सग्राम के सैनिक हो गये।

ने देखी वह जवाहरलालजी के उस रूप को भुला नही सकते। लाहौर की भीषण सर्दी मे रावी के किनारे आग जलाकर वह अन्य लोगो के साथ चार-पाच घण्टे नाचे। उनके उत्साह से सारे लोगो का मन उत्साह से भर गया।

सिखो का चिमटा बजा-बजाकर यह गाना 'नही रखनी सरकार, जालिम नही रखनी' और लाल कुरतीधारी खान अब्दुल गफ्फार साहब के दल का यह गान 'लग गई लगन आजादी दी जाहै दिल दे बीच, वे मजनू होकर फिरते है, हर शहरा हर मुलके बीच' और इन गानो के साथ जवाहरलालजी का नाचना एक अद्भुत जोश और देशभक्ति पैदा कर रहा था। इसके बाद ही सन् १९३१ की जनवरी को वह स्वाधीनता-सकल्प काग्रेस वर्किंग कमेटी ने सारे देश मे प्रचारित किया। लाखो-लाखो लोगो ने उस सकल्प को पढा और प्रतिज्ञाए की तथा ६ अप्रैल को गाधीजी ने डाडी मे समुद्र-किनारे नमक-कानून तोडकर सत्याग्रह शुरू किया।

सन् १९४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह मे गाधीजी ने अपने दो प्रतिनिधि चुनकर उन्हे सबसे पहला सत्याग्रही घोषित किया, राजनैतिक रूप मे जवाहरलालजी को और आध्यात्मिक रूप मे विनोबाजी को। इसके बाद सन् १९४२ का 'भारत छोडो' आन्दोलन हुआ। देश की स्वाधीनता के इन चारो प्रमुख आन्दोलनो मे जवाहरलालजी की वीरता, त्याग, कष्ट-सहन करने की शक्ति और देशभक्ति दिन-दिन निखरती गई और वह हमारे सबसे बडे सेनानी सिद्ध होते गये।

जवाहरलालजी का लालन-पालन, शिक्षा और रहन-सहन बहुत ही उच्च आभिजात्य ढग पर हुआ था, लेकिन उनके मानस पर इसका अधिक असर नही रहा। वह जन-साधारण का जीवन जीना पसन्द करते थे। एक बार की बात है। माता स्वरूपरानीजी खादी भडार मे खादी खरीदने आई तो उनको बढिया-से-बढिया खादी दिखाई गई। उन्होने कहा, "मुझे जवाहर के लिए खादी लेनी है।" उनसे कहा गया कि इससे बढिया खादी तो आती ही नही तो उनका गला भर आया, "यह तो ठीक है, पर वह बढिया कहा पहनता है! वह तो मोटी खादी पसन्द करता

है, इसलिए मोटी खादी दिखाओ।" इसी प्रकार एक दिन उन्होने एक कविता सुनाई, जो सीधी-सादी भाषा मे तुकबदी-जैसी थी, पर मातृत्व और वात्सल्य की करुणा मे बेजोड थी। उन्होने कहा कि लखनऊ-जेल मे जवाहर से मिलकर लौटते समय ट्रेन मे मैं बहुत दुखित हो गई थी और यह सब लिख गई।

साइमन-कमीशन का लखनऊ मे बायकाट करते समय जवाहरलालजी पर लाठी का प्रहार हुआ था तथा नाभा जैसी छोटी रियासत ने उनको हथकडी पहनाकर अपनी जेल मे बन्द कर दिया था। सन् १९३७ की बात है। गाधीजी को रक्त के दबाव के कारण बम्बई-जुहू मे लाया गया। वर्किंग कमेटी या अन्य सभाए गाधीजी जहा जाते, उनके पीछे-पीछे जाती। यहा भी वर्किंग कमेटी की मीटिंग थी। मीटिंग शाम को चार बजे के करीब अगले दिन के लिए स्थगित हुई, तो दादाभाई नौरोजी की पोती पेरिनबेन कैप्टन ने एक प्रोग्राम बनाया, गाधीजी के स्थान पर नेताओ का मनोरजन करने के लिए। सयोगवश योही बात चली कि गाधीजी और जवाहरलालजी मे कौन ज्यादा दिन जेल मे रहा। मनोरजन के रूप मे ही यह सवाल आ गया। हिसाब लगाकर देखा गया, तो पता चला कि जवाहरलालजी जेल मे ज्यादा रहे, यद्यपि सजा ज्यादा लम्बी गाधीजी को मिली। ये सब तथा और अनेक बाते हैं, जो जवाहरलाल-जी के कष्ट-सहन, त्याग, तप को स्वतत्रता-आदोलन के इतिहास मे प्रकट करती है।

इसके सिवा उनमे नेतृत्व की शक्ति थी, देश की स्थिति समझने-जानने का ज्ञान था, जन-साधारण मे जाकर मिलकर काम करने की इच्छा, भावना और कार्य-शक्ति थी। गाधीजी के विचारो के साथ विरोध होते हुए भी वह गाधीजी के इतने नजदीक थे जितना दूसरा कोई नही था। गाधीजी ने सन् १९४१ की जनवरी मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की मीटिंग मे कहा था, "लोग मुझसे पूछते है कि राजेन्द्रबाबू, वल्लभभाई या अन्य आपके विचारो को अधिक मानते है या और ज्यादा साथ है, पर उनकी अपेक्षा आप जवाहरलालजी को ही अपना उत्तराधिकारी क्यो मानते है? यह सब ठीक है, मैं जानता हू। तब भी मैं

यही कहता हूं कि सचमुच मेरा वारिस तो जवाहरलाल ही है।"

जवाहरलालजी ऐसा तपा हुआ सोना थे, जो शत-प्रतिशत सच्चा कुदन कहा जा सकता है। गाधीजी ने कहा था,"जवाहर शुभ्रस्फटिक है, देश उसके हाथ मे सुरक्षित है।" उन्होंने काग्रेस का नाना रूपो मे, वालटियर से लेकर सभापति के पद तक, नेतृत्व किया। काग्रेस के जितने भी प्रस्ताव होते, उनमे जवाहरलालजी का विशेप हाथ होता था। राजाजी, जवाहरलालजी और गाधीजी ही विशेपकर प्रस्तावो का मसविदा वनाया करते और उनपर विचार होता। काग्रेस की नीतिया निर्धारित करने मे गाधीजी के वाद किसीका वडा हाथ था तो वह जवाहरलालजी का ही था। कहा जा सकता है कि दो विचारधाराए चलती थी एक गाधीजी की और दूसरी जवाहरलालजी की। वर्किंग कमेटी मे ऐसे-ऐसे विवाद भी आये है जव काग्रेस के भीतर-ही-भीतर वडी गडवड मालूम होने लगती, पर गाधीजी की दूरदर्शिता और जवाहरलालजी की गाधीजी के प्रति आस्था से सव वाते ठीक हो जाती थी।

३ : तेजस्वी सरदार

लोग सरदार पटेल को 'लौह पुरुप' कहते हे। यह नाम प्यारा और प्रसिद्ध भी हो गया है, पर मैं सोचता हू तो ऐसा लगता है कि यह नाम उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को व्यक्त नही करता। लौह पुरुप नाम, ऐसा लगता है कि योंही चल पडा। मुझे उनके दर्शन और कार्य को लौह पुरुष की अपेक्षा यदि कोई नाम ही देना होता तो दृढ पुरुप ज्यादा अच्छा लगता। सरदार पटेल के जीवन मे, हर जगह हर मौके पर ऐसी दृढता के दर्शन होते है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। त्रिपुरी-काग्रेस जव आरम्भ हुई उसी समय चारो ओर मे हो-हल्ला होने लगा और पत्थर वरसने लगे। वगाल के प्रतिनिधि काफी हल्ला कर रहे थे,

पत्थर आकर गिर रहे थे। मैं सरदार के पास ही बैठा था। मैंने कहा, "अब क्या होगा, कैसे होगा," तो हँसे और बोले, "डरते हो?" मैंने कहा, "डरने की बात नही। काग्रेस का इस हालत मे अधिवेशन कैसे होगा?" कहने लगे, "अरे, काग्रेस को चलाने के अनेक रास्ते है। यह तो योही घटे-दो घटे मे चुप हो जायगे।" हर हालत मे, चाहे कितनी भी विपरीत स्थिति हो, सरदार का न तो धीरज टूटता था, न वह चिंतित होते थे,। उनकी दृढता वैसे ही अडिग रहती जैसे कुछ हुआ ही नही। वह साधारणत सहज ही बडी-बडी बातो से प्रभावित नही होते थे। यदि वह प्रभावित होते थे तो आदमी की कार्यक्षमता, सत्यता, प्रामाणिकता से। शायद बहुत कम लोग जानते है कि गाधीजी जब दक्षिण अफ्रीका से लौटकर आये तो अहमदाबाद की बार एसोशियेशन ने उन्हे मानपत्र दिया। सरदार उन दिनो बैरिस्टरी करते थे। गाधीजी आये और उनका अभिनन्दन हुआ, पर सरदार अपने मित्रो से बैठे बात करते रहे और गाधीजी से जरा भी प्रभावित नही हुए, न उनको कोई खास बडा आदमी ही माना, पर कुछ ही वर्षो बाद वह गाधीजी के कार्यो से इतने प्रभावित हुए कि अपनी अच्छी चलती वकालत को छोडकर सम्पूर्ण रूप से गाधीजी के साथ हो गये।

सरदार पटेल, उनके बडे भाई प्रेसीडेन्ट पटेल और उनके छोटे भाई नरसिहभाई पटेल तीनो ही अपने-अपने स्थानो पर विशेष आदमी थे। विट्ठलभाई के जीवन की विशेषताओ का यहा उल्लेख नही करना है। वे सर्वविदित है और अपने ढग की अनोखी है। सरदार की तो बात ही दूसरी है। वह अद्भुत सगठनकर्त्ता थे। बारडोली-आन्दोलन मे सरदार ने जो सगठन किया था और आदोलन का जिस तरह सचालन किया, वह भारत की स्वतत्रता के इतिहास मे अपने ढग का एक निराला आदोलन ही नही, एक ज्वलत उदाहरण भी है। बारडोली के आदोलन के समय ही वल्लभभाई को सरदार के नाम से पुकारा गया और सरदार की सरदारी मे वह आन्दोलन जिस तीव्रता, निर्भीकता, बहादुरी और त्याग की भावना से चला, वह अपने ढग की [illegible] बात थी। इस महान आन्दोलन का अपना इतिहास है और यहा

ही प्रेरणाप्रद है। वास्तव मे वह आदोलन ही गाधीजी के अहिंसक आदोलन की भूमिका था और सरदार उस आदोलन के एकमात्र नेता थे। इसमे कोई शक नही कि सरदार ने अपने त्याग और प्रभाव से गुजरात मे अनेक कार्यकर्त्ता तैयार किये थे और वापूजी को ऐसे लोगो ने ही भारत का नेतृत्व करने का बल दिया था। सरदार सम्पूर्ण वम्वई और गुजरात के एकमात्र नेता थे। सरदार गाधीजी के प्रति अपनी अटूट श्रद्धा से समर्पित थे। ऐसे-ऐसे महान लोगो को पाकर गाधीजी ने स्वतत्रता की लड़ाई मे सफलता प्राप्त की थी।

सरदार का कार्यकर्त्ताओ पर ऐसा प्रभाव था, जो अन्य किसी नेता का अपने साथियो पर कम देखने को मिलता है। हरिपुरा-काग्रेस की वात है। इस काग्रेस की स्वागत-समिति के सभापति थे दरबार गोपालदास, जो गुजरात के एक वडे जमीदार थे, पर वापूजी और सरदार के प्रभाव मे आकर आजादी की लडाई के एक प्रभावशाली लडवैये वन गए। सरकारी कोप के कारण उनकी जमीन और सव अधिकार छीन लिये गये, जेलो की यातना, सम्पत्ति की जब्ती और आएदिनो के अनेक कष्टो ने दरवार गोपालदास को अपने तालुका का विशेप आदमी बना दिया था और देश उस समय दरवार गोपालदास को खूव जानता था। ऐसे व्यक्ति को ही इस काग्रेस की स्वागत-समिति का सभापति वनाया गया था। जो लोग काग्रेस के इतिहास को जानते है और काग्रेस अधिवेशनो मे शरीक होते रहे है, उनको पता है कि काग्रेस के सारे इतिहास मे हरिपुरा-काग्रेस की जैसी व्यवस्था कही भी शायद उसके पहले और वाद मे कभी नही हुई। दस हजार स्वयसेवक और तीन हजार स्वयसेविकाए चौवीसौ घटे जिस तरह काम मे जुटी रहती थी और उनकी लगन, तत्परता, काम के प्रति दायित्व की भावना ऐसी थी कि गुजरात की विशेषता, कार्यक्षमता, सफाई-प्रियता के जो दर्शन हुए, उसकी याद आज भी ताजा है। ऐसी स्वागत समिति के सभापति दरवार गोपालदास जव काग्रेस प्रतिनिधियो का स्वागत करने मच पर आये तो लोगो ने करतल ध्वनि से उनका वहुत ही भावभरा स्वागत किया और सोचने लगे कि देखे दरवारसाहव अपने

व्याख्यान मे क्या कहते है। पर उनका व्याख्यान भी काग्रेस स्वागत समिति के सभापतियो के व्याख्यानो मे लाजवाब था। उन्होने अपनी जेब से एक छपा हुआ कागज निकाला और कहा कि गुजरात की बात, गुजरात का काम, गुजरात की कमी या विशेषता तथा देश की समस्याओ पर मुझे कुछ नही कहना है। हमारे यहा कहने का अधिकार वल्लभभाई पटेल को है, हम सब उनके सिपाही है। सिपाही को सरदार जो हुक्म देते है, उसका कर्तव्य होता है कि वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उस हुक्म का पालन करे। मुझे उन्होने कह दिया कि तुमको स्वागत-समिति का सभापति बनना है। मै इसके योग्य हू या नही, यह सवाल नही उठता, सरदार की आज्ञा का पालन करना हम सबका काम है। अत. यहा आप लोगो को हमारी स्वागत-व्यवस्था मे जो कष्ट और आराम हुआ है, उसकी प्रशसा या निन्दा सरदार की है, इसका सारा श्रेय किसीको है तो वह सरदार को है। हम सब उनकी आज्ञा पर चलने-वाले लोग है। इस तरह की निष्ठा, निरभिमानता गुजरात के कार्य-कर्त्ताओ और नेताओ मे प्रकट हुई है, सो बापूजी और सरदार के नेतृत्व के कारण।

सरदार वल्लभभाई गुजरात के नही, सारे भारत के एक विशेष नेता बन गये। बारडोली-सत्याग्रह के बाद ही काग्रेस सगठन की बाग-डोर वल्लभभाई के हाथ मे थी, हर प्रात के कार्यकर्त्ताओ का सरदार से सीधा सबध था। वह हर प्रात की स्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान रखते थे, वहा के सच्चे कार्यकर्त्ताओ को पहचानते थे। उनके स्वभाव की एक विशेषता थी कि वह आदमी को परखना जानते थे और जो आदमी उनको सही लगता उसपर पूरा विश्वास करते।

जहा कही उनको यह सदेह होता था कि कार्यकर्त्ता लोभ से किसी भी प्रकार की भ्रष्टता मे पड गया है, तो वह उस कार्यकर्त्ता को काग्रेस से खत्म कर देते और कह देते तुम काग्रेस मे रहने योग्य नही हो, अपना अन्य जगह काम करो। पार्लमिंटरी बोर्ड मे, आई० एन० ए० के मामले मे तथा अन्य कामो पर जब-जब उनको देखने का मुझे मौका मिला तब-तब यह आभास हुआ कि हम एक निहायत योग्य शासक और सगठन-कर्त्ता के समीप बैठे है। मत्री बनने के पहले जैसे वह रहते थे और जिस तरह का उनका जीवन था उसके बाद उसमे मैंने कोई अन्तर नही देखा। और मन्त्रियो की कोठियो मे काश्मीर और मिर्जापुर के कालीन बिछे हुए थे, पर सरदार की कोठी मे ऊट के बालो के कालीन थे। उन्होने जीवन-पर्यन्त अपने और मणिबहन के हाथ के कते सूत के कपडे पहने। केवल सर्दी के समय एक जाकट पहनते थे और एक चद्दर इस्तेमाल करते थे।

उनमे विनोद भी अद्भुत था। एक बार जुहू मे मैं जमनालालजी के पास बैठा बात कर रहा था। जमनालालजी चर्खा कात रहे थे और जानकीदेवी बगल के कमरे मे प्रार्थना कर रही थी। सरदार आये तो जमनालालजी ने अगुली से इशारा किया कि जानकीदेवी प्रार्थना कर रही है। इसपर सरदार बोले, "यह बेचारी तो यह प्रार्थना करती है कि इस जन्म मे यह निखट्टू पति मिला तो मिला, अगले जन्म मे न मिले।" सबको बहुत हँसी आई। इसी प्रकार जब क्रिप्स-मिशन हिन्दुस्तान आया था तो उससे बहुत आशाए थी। वह हिन्दुस्तान के मुख्य-मुख्य राजनैतिक दलो से मिला। काग्रेस से मिलना तो सबसे ज्यादा जरूरी था ही। इस समय मौलाना आजाद काग्रेस के सभापति थे। मौलाना आजाद क्रिप्स-मिशन से मिलने गये, तो काग्रेस वर्किंग कमेटी के प्रमुख लोग, जो उस समय दिल्ली मे उपस्थित थे, मौलाना की प्रतीक्षा कर रहे थे। मौलाना जब लौटकर आये तो उनसे पूछा, "मौलाना क्या खबर लाये ?" मौलाना ने बडी गम्भीरता से कहा, "खबर तसल्ली-बख्श है।" सरदार बोले, "मौलाना, हमने रहीमबख्श भी सुना, खुदा-बख्श भी सुना, हनुमानबख्श भी सुना, यह तसल्लीबख्श कौन है ?"

४ : शालीन मौलाना आजाद

सन् १९२० की बात है। पहली अगस्त को गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन की योजना देश के सामने रखी और उसपर विचार करने के लिए सितम्बर मे लाला लाजपतराय की अध्यक्षता मे कांग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ता मे हुआ। उस समय देश मे एक ऐसी हवा चल रही थी, जिसमे स्वतन्त्रता के लिए तडप थी और लोग कुछ कर गुजरने के लिए आतुर थे। मौलाना शौकत अली और मोहम्मद अली जेल से बाहर आये थे और उनका बहुत प्रभाव था। इस कांग्रेस अधि-वेशन मे क्या होगा, इसपर सारे देश की आख लगी थी। इसी अधि-वेशन मे एक नौजवान मुसलमान आया, जिसके साथ तीस-चालीस आदमी होगे और उसकी वेशभूषा अजीब-सी लग रही थी। दो आदमी उसके पीछे उसका कधो पर लटका हुआ कपडा लिये हुए चल रहे थे और सिर पर एक विचित्र तरह की पगडी थी, जिसके दोनो ओर कानो तक कुछ लगा हुआ था। निहायत सुन्दर, गौरवर्ण, तेजस्वी तथा आंखो मे गहरी चमक, मुह पर छोटी-छोटी दाढी-मूछ। बहुत ही गम्भीर चाल से यह व्यक्ति मच पर आकर बैठा। मैने पूछा, "यह कौन है?" पता लगा कि ये मौलाना अबुल कलाम आजाद साहब है और मुसलमानों के बहुत बड़े मौलाना है। उनके मुरीदो की सख्या हजारो है और अरबी, फारसी के बहुत बडे विद्वान है।

मौलाना को पहले-पहल मैने इसी रूप मे जाना और पहचाना। आज लगभग ५० वर्ष के पश्चात् भी वह सूरत, वह रूप, मन से बिसरा नही। पता लगाने पर मालूम हुआ कि मौलाना को भारत सरकार ने खतरनाक आदमी समझकर भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत रांची मे बहुत वर्षों तक नजरबन्द कर दिया था। स्वभावत. उन दिनो ऐसे आद-मियो पर गहरी श्रद्धा जगती थी। सभी जानते है, इस कांग्रेस मे असहयोग का प्रस्ताव पास हुआ और देश मे एक प्रचण्ड आन्दोलन चला, जिसमे इच्छा-अनिच्छा सभी लोगो को योगदान करना पडा और

जो विरोधी लोग थे वे भी चार महीने वाद नागपुर-काग्रेस मे आदोलन के समर्थक हो गये। कलकत्ता-काग्रेस मे असहयोग का प्रस्ताव तो पास हुआ, पर बडे नेताओ मे से किसीने उसका समर्थन नही किया। लेकिन चार महीने वाद नागपुर-काग्रेस मे यह प्रस्ताव वहुत बडे वहुमत से पास हुआ और देशवन्धु चित्तरजन दास, लाला लाजपतराय आदि वडे नेताओ ने आदोलन का समर्थन किया। इस आदोलन का लम्वा इतिहास है। कहना यह है कि मौलाना अवुल कलाम आजाद की तकरीरो ने इस आदोलन मे जान फूक दी थी। मुझे इन्ही दिनो मौलानासाहव की तकरीर सुनने का मौका मिला और ऐसा मन वन गया कि मौलाना की तकरीर कही भी हो, सुने विना न रहता। मौलाना जेल चले गये और कुछ ही दिनो के वाद गाधीजी ने चौरी-चौरा के कारण आदोलन को स्थगित कर दिया।

जेल से मुक्त होने के वाद आहिस्ते-आहिस्ते मौलानासाहव से परिचय वढने लगा और वह इतने सुसस्कृत और सुलझे हुए विचारो के आदमी लगे कि उनके प्रति एक विशेष आदर का भाव सदा के लिए वन गया। मौलाना के पिता भी वगाल के वहुत वडे मौलाना थे। हर साल उनके मकबरे पर मेला लगता था और लाखो मुसलमान उस मेले मे जाते थे। कलकत्ता मे ईद की नमाज सदा मौलाना आजाद साहव ही पढाते थे। वाद मे मुस्लिम लीग का जोर वहुत वढ जाने के कारण कुछ मुसलमानो ने कहा कि हम मौलाना से नमाज नही पढेगे, लेकिन मौलाना के साथ नमाज पढनेवालो की सख्या वहुत वडी थी, तव कलकत्ता के मोनूमेट मैदान मे दो जगह नमाज पढने की व्यवस्था की गई। मौलाना को यह मालूम हुआ तो उन्होने नमाज पढना अस्वीकार कर दिया और कहा कि खुदा की इवादत मे मैं सियासत नही घुसेडना चाहता और नमाज पढाने नही आऊगा। वहुतकहने-सुनने पर भी वह नही गये। मौलाना के मुरीदो की सख्या वहुत वडी थी। वे मौलाना को भेट के रूप मे वहुत-कुछ देते थे, जो शायद साल मे वहुत वडी राशि हो जाती थी। मौलाना ने वहुत दिन पहले ही इसे लेना नामजूर कर दिया और मुरीदो से कहा कि तुम खुदा को माननेवाले लोग इसान को क्यो भेट

देते हो। इस तरह मौलाना धार्मिक क्रांतिकारी भी थे, जिसका गलत लाभ मुस्लिम लीग ने उठाया।

मौलाना वहुत छोटी उम्र मे काग्रेस वर्किंग कमेटी के मेम्बर चुने गये और जीवन-पर्यन्त रहे। वह केवल मेम्बर ही नही रहे, काग्रेस और देश के एक विशेष नेता भी रहे। फैजपुर-काग्रेस के खुले अधिवेशन मे बापूजी शरीक नही हुए थे। अधिवेशन समाप्त होने के वाद जब हम लोग लौटे तो बापूजी ने पूछा कि कौन कैसा बोला। कुछ नाम बताने के बाद जमनालालजी ने कहा कि मौलाना बहुत अच्छा बोले। बापूजी ने कहा कि मौलाना तो सदा ही अच्छा बोलते है और उनके विचार बहुत सुलझे हुए है। इस प्रकार मौलाना के व्यक्तित्व की बापूजी के मन पर एक छाप थी और वह उनके सुझाये विचारो पर गंभीरता से सोचा करते थे।

सन् १९४५ मे चुनाव हो रहा था। उस समय का एक उदाहरण है कि नेशनलिस्ट मुसलमानो को जिताने के लिए काग्रेस ससदीय बोर्ड बहुत खर्च कर रहा था। मुझे बगाल बोर्ड का कोषाध्यक्ष बनाया गया था। सयोग ऐसा हुआ कि मैने ८४००० रुपये बैक से मगाये और सुबह के अखबारो मे खबर आई कि हाजर-पाचसौ-सौ के नोट कैंसिल कर दिये गए। मुझे बडी चिन्ता हुई कि इन रुपयो का कैसे-क्या करे। मौलाना उस समय काग्रेस के अध्यक्ष थे। मै उनके पास गया और कहा कि यह स्थिति है, क्या करना चाहिए। उन्होंने कहा, "मेरे नाम से बैक मे जमा कर दो। मेरा हिसाब पार्क स्ट्रीट स्टेट बैक की शाखा मे है।" रुपया बैक मे जमा करने के लिए जो फार्म था, उसमे पेशे का खाना भरना था। मैने मौलाना से कहा, "आपका पेशा तो देशभक्ति है, वह लिख दे। आपके पास और कोई सम्पत्ति या व्यापार तो है नही।" वह बोले, "नही, यह गलत होगा। मै कुछ लिखकर कमाता हूं, इसलिए देश-भक्ति कैसे लिखा जा सकता है। अदीब (लेखक) लिखो।"

वह सुबह जल्दी उठ जाते थे और तीन-चार घटे अकेले लिखने-पढने का काम करते थे। उनका घरेलू पुस्तकालय भी मैंने देखा, जिसमे अरबी, फारसी और उर्दू की किताबो की सख्या बहुत बडी थी और वे कितनी ही अलमारियो मे लगी हुई थी। मैंने कई बार देखा कि राजनैतिक झंझावात मे फसे हुए रहने पर भी वह अपने सेक्रेटरी श्री अजमल खा साहब के साथ साहित्यिक चर्चा कर रहे है और दुनिया मे अरबी पर लिखे हुए लेखो और पुस्तको पर बहस-मुबाहिसा कर रहे हैं। मैं विशेष कुछ समझा नही तो अजमल खा साहब से एकदिन पूछा। उन्होने कहा कि अरबी, फारसी तथा अग्रेजी आदि मे जो कुछ पत्रो, किताबो मे निकलता है उसपर मौलाना मौका मिलते ही चर्चा करना पसन्द करते हैं। आज इसी प्रकार की चर्चा हम लोग कर रहे थे।

मौलाना स्वभाव से रईस थे, अमीर थे, लेकिन वह अपने मातहतो और दोस्तो के साथ इस तरह रहते और मिलते थे कि वे उन्हे अपना ही अनुभव करे। उनके घर के नौकर-चाकरो को देखकर ऐसा लगता था कि वे बहुत ही खुश हैं। मौलाना बहुत कम उम्र मे दिल्ली मे विशेष काग्रेस के सभापति बने थे, पर १९४० मे रामगढ-काग्रेस के सभापति बने तो देश की स्वाधीनता-प्राप्ति तक रहे। उनके सभापति काल मे ही देश स्वाधीन हुआ। यह गौरव उन्हे प्राप्त हुआ : दु ख है कि पाकिस्तान के घोर विरोधी होते हुए भी उन्हे यह स्वीकार करना पडा और यह घटना भी उनके सभापतित्व काल मे ही हुई।

मौलाना का सारा जीवन एक विशेष प्रकार का जीवन था, जो अनेक घटनाओ, अनेक उतार-चढावो और बहुत बडी घाटियो और मजिलो से गुजरा। स्वाधीनता के पहले भी वह देश के एक महान् नेता और देश और काग्रेस के बडे-से-बडे लोगो मे रहे और स्वाधीनता के बाद भी देश के शासन-सचालन मे उनका बहुत बडा स्थान रहा।

अहमदनगर के किले मे जब वह कैद थे तब उनकी बेगमसाहिबा बहुत बीमार हुई। उन्होने सरकार से दरख्वास्त नही की कि मुझे उनको देखने की इजाजत दी जाय। बेगमसाहिबा ने सोचा कि शायद मौलाना

को सरकार मिलने की अपने-आप इजाजत देगी और वह चाहती रही कि अन्तिम समय मे मौलाना को देख सके। मौलाना इस बात को जानते थे। बेगमसाहिबा बार-बार पूछती रही कि क्या मौलाना आये, क्या मौलाना आये ? अन्त मे उनको जब मालूम हुआ कि मौलाना नही आ सकेंगे तब उन्होंने इत्र दिया और कहा कि मौलाना जब भी आयें तब मेरी ओर से यह इत्र उन्हे भेंट करना और कहना कि नमाज पढते समय इसको लगा ले। यह बडा ही करुण प्रसग है, पर ऐसे सदमो से देश-सेवा करने वालो को गुजरना पडता है।

५ : अमर सेनानी सुभाषचंद्र बोस

आज के लोग सुभापचन्द्र बोस को 'नेताजी' के नाम से जानते हैं और इसी नाम से पुकारते हैं। यह नाम उनको भारत से बाहर जाने और आजाद हिन्द फौज का सगठन करने पर दिया गया और यह नाम उनके जीवन का अन्तिम नाम भी है। यह नाम प्रभावशाली और शक्तिशाली भी है, तब भी उनकी उम्र के लोग या उनसे कुछ बडे और उनके पुराने साथियों का प्यारा नाम सुभाप या सुभापबाबू ही है। और इस नाम के साथ कितनी बाते जुडी हुई हैं—सुभापबाबू के त्याग की, वीरता की, देश-भक्ति की, सगठन-शक्ति की, साथियो के प्रति सहृदयता की, प्रेम की, आदर की, जिन्हें उनके साथी या उनके साथ काम करनेवाले कभी भूलते नही।

कुछ नही कहना है। अन्धा धर्म तो कभी किसी काम का नही रहा।

सुभाषबाबू पढने-लिखने मे सदा बहुत तेज थे और सभी परीक्षाओ मे उन्होने प्रशसनीय सफलता प्राप्त की। आई० सी० एस० की परीक्षा देने का मन न होने पर भी और किसी सरकारी नौकरी की इच्छा न होने पर भी उन्होने वह परीक्षा दे दी, जबकि उनको बहुत थोडे दिन पढने का मौका मिला। उन्होने परीक्षा मे प्रथम स्थान प्राप्त किया। लेकिन उनका निर्माण सरकारी नौकरी करने के लिए हुआ ही नही था। उन दिनो आई० सी० एस० परीक्षा पास करना और सरकारी नौकरियो मे जाना बहुत गौरवपूर्ण माना जाता था। शायद उनके पिताजी भी उनसे यही आशा रखते थे। उनके पिता जानकीनाथ बोस कटक के नामी वकील थे और बोस-परिवार बगाल मे बहुत प्रसिद्ध परिवार था। सुभाषबाबू के सभी भाई अपने-अपने कामो मे बहुत योग्य और सफल रहे है। सुभाषबाबू के बडे भाई श्री शरत्चन्द्र बोस ने तो इग्लैड मे पढते समय ही सुभाषबाबू की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी। सुभाषबाबू के स्वभाव, विचार और कामो के प्रति एक प्रकार का प्रेम-भरा आदर उनके मन मे पैदा हो गया था, जो हमेशा बढता ही गया। सुभाषबाबू से वह इतने प्रभावित थे कि वह लाखो रुपयो की बैरिस्टरी की आय छोडकर जेल की यातनाए भोगते रहे और सुभाषबाबू का साथ देते रहे। मुझे सौभाग्य से दोनो भाइयो को देखने और उनके साथ काम करने का अवसर मिला। सुभाषबाबू के बारे मे सोचते समय शरत्बाबू सहज रूप से मेरे सामने आ जाते है। इसमे कोई शक नही कि सुभाषबाबू का त्याग और तप, उनकी देशभक्ति और वीरत्व अदभुत है, पर शरत्बाबू का वरदहस्त या एक प्रकार का भरोसा, आश्वासन, जो कह लीजिए, वह सदा सुभाषबाबू को मिलता रहा और शरतबाबू की लाखो रुपयो की आय हरदम सुभाषबाबू के लिए न्योछावर होती रही। इसका कारण सुभाषबाबू की देश-सेवा ही है, जो शरतबाबू को प्रभावित करती रही। सबसे बडी बात तो यह थी शरतबाबू की पत्नी विभावती देवी इस मे सुभाषबाबू और शरत्बाबू की सबसे बडी सहायक रही।

सुभाषबाबू के आई० सी० एस० पास करके इग्लैण्ड से लौटने के

कुछ ही दिन बाद देश मे असहयोग का आन्दोलन आरम्भ हो गया। देश-बन्धु चित्तरजन दास और पडित मोतीलाल नेहरू अपनी लाखो रुपयो की आमदनी छोडकर इस आन्दोलन मे शरीक हुए और इस आन्दोलन मे गाधीजी के बाद उनका ही स्थान था। देशबधु चित्तरजन दास ने इस आन्दोलन को बगाल मे बहुत बडा रूप दिया। सुभाषचन्द्र बोस भी कार्यकर्त्ता के रूप मे चित्तरजन दास के कृपाभाजन बने और आन्दोलन मे हिस्सा लेने लगे। इसके पहले से ही बगाल के क्रान्तिकारियो से उनका सम्बन्ध और सहयोग था ही। चितरजन दास के साथ काम करते हुए वह उनके इतने नजदीक आ गये कि वह उनको अपना पुत्र जैसा ही मानने लगे।

सन् १९२३ मे कलकत्ता कारपोरेशन का नया विधान बना और चित्तरजन दास उसके प्रथम मेयर बने तो उन्होने सुभाषबाबू को ही एक्जीक्यूटिव आफिसर बनाया। इस पद पर सुभाषबाबू को जो वेतन मिलता था, वह प्राय सब-का-सब देश के क्रातिकारियो की सहायता मे दे देते। क्रान्तिकारियो से उनका सबध दिनोदिन बढता जा रहा था, जिससे कुछ ही दिनो बाद वह गिरफ्तार हो गये और उनको माडले जेल भेज दिया गया, जहा वह बहुत दिनो तक निर्वासित रहे। इसी बीच देशबधु का स्वर्गवास हो गया। सुभाषबाबू जेल से छूटे तब बगाल का नेतृत्व एक प्रकार से जे० एम० सेनगुप्त के हाथ मे था। सुभाषबाबू आते ही अपने काम मे जुट गये। उनका व्यक्तित्व, प्रतिभा और सगठन-शक्ति तो बहुत बडी थी ही, देश उनको प्यार भी करता था। वह निहायत सुन्दर, गौरवर्ण और प्रभावशाली व्यक्ति थे। सन् १९२८ मे कलकत्ते मे काग्रेस होनेवाली थी। पडित मोतीलाल नेहरू इस काग्रेस के सभापति थे। सुभाषबाबू काग्रेस के स्वयसेवको के 'जनरल आफ कमान्ड' बनाये गये थे। 'ज० आ० क०' की वर्दी मे स्वयसेवको की रैली मे जब वह शरीक हुए तब वह कितने सुन्दर और प्रभावशाली लगते थे, उसको जिन्होने देखा है, वही जानते है। और आज बहुत बरसो बाद भी आजाद हिन्द फौज के नेताजी की वर्दी 'ज०आ०क०' की याद दिलाती है। उन दिनो किसीने कल्पना भी नही की थी कि

यही उनका अतिम वेश होगा। सुभाषबाबू से मेरा पहला परिचय इसी समय हुआ और आहिस्ते-आहिस्ते वह बहुत घना बनता गया।

काग्रेस के साथ राष्ट्रभाषा सम्मेलन भी हुआ करता था। इस साल राष्ट्रभाषा सम्मेलन के सभापति के लिए हमने सुभाषबाबू से प्रार्थना की और उन्होने सहर्ष स्वीकार किया। सभापति-पद से उन्होने राष्ट्र-भाषा हिन्दी के लिए जो भाषण दिया वह आज उपलब्ध नही हो रहा है, पर उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा था कि भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी के सिवा कोई अन्य भाषा नही हो सकती और हर प्रात के लोगो को हिंदी सीखनी चाहिए। सुभाषबाबू का हिन्दी-प्रेम प्रख्यात है। इसका एकाध उदाहरण मैं आगे दूगा। इस काग्रेस मे पूर्ण स्वाधीनता के विचार पर काफी सघर्ष हुआ था। पडित जवाहरलाल नेहरू और सुभाषबाबू इसी काग्रेस मे पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव करना चाहते थे और गाधीजी और पडित मोतीलालजी आदि नेता अग्रेजो को कुछ और समय देना चाहते थे। सर्वदल सम्मेलन मे, जिसके सभापति पडित मोतीलालजी ही थे, औपनिवेशिक स्वराज्य का प्रस्ताव पास हुआ था। लेकिन बहुत सघर्ष के बाद रात मे करीब १०-११ बजे विषय निर्वाचिनी समिति मे सर्व-सम्मत प्रस्ताव रखा गया कि एक वर्ष के भीतर यदि सरकार औपनि-वेशिक स्वराज्य की हमारी माग स्वीकार न करे, तो अगली काग्रेस मे हम पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव करने के लिए स्वतत्र होगे। पडित जवाहरलाल ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। सुभाषबाबू ने भी इसको स्वीकार तो किया, पर एक प्रकार के असतोष के साथ, क्योकि वह अपने विचारो मे सदा उग्र रहे।

सुभाषबाबू आदोलन मे लगे रहे और सरकार की कडी निगाह उनके ऊपर बनी रही। लाहौर-काग्रेस मे जब पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास हुआ तो उनको बहुत ही प्रसन्नता हुई और वह अन्दोलन करने लगे। फलस्वरूप सरकार ने उनपर मुकदमा चलाया और नमक सत्या-ग्रह के पहले ही उन्हे जेल भेज दिया।

सन् १९३० की ६ अप्रैल को राष्ट्रीय सप्ताह के प्रथम दिन गाधी-जी ने डाडी मे नमक कानून तोडकर सत्याग्रह किया। देश के बहुत-से

लोग जेलो मे गये। महिलाए भी बहुत बडी सख्या मे जेल गई। सुभाप-बाबू तो पहले से ही जेल मे थे। दुर्भाग्य से इसके पहले जे० एम० सेनगुप्ता तथा सुभापबाबू के बीच मतभेद चलने लग गया था। सुभापबाबू जेल मे रहने के कारण आदोलन मे प्रत्यक्ष भाग नही ले सके, लेकिन शायद अक्तूबर के महीने मे सुभापबाबू जेल से मुक्त हुए, उस समय देश के सभी नेता जेलो मे थे। सुभापबाबू के बाहर आने से एक नये उत्साह की लहर दौड गई और खासकर बगाल मे फिर जोरो से काम होने लगा।

सन् १९३१ की २६ जनवरी को कानून तोडकर कलकत्ता के मौ-नुमेंट मैदान मे स्वाधीनता का झडा फहराया गया। उस दिन के सत्याग्रह की बात सारे भारत मे बगाल की अपनी शान की बात है। सरकार ने आदोलन के मुख्य-मुख्य नेताओ को पहले से ही गिरफ्तार कर लिया था। सुभापबाबू कारपोरेशन के मेयर थे, इसलिए वह एक-दो दिन पहले से ही मेयर के कमरे मे जाकर बैठ गये। उन्हे गिरफ्तार नही किया जा सका और ऐन वक्त पर वह जलूस के साथ मोनुमेंट पर झडा फहराने के लिए निकले और बाद मे यह जलूस बहुत ही बडा हो गया।

इस जलूस पर भयकर लाठी चार्ज हुआ। सुभापबाबू को गिरफ्तार करते समय तथा लाठी चार्ज मे उनके हाथ की उगली टूट गई। सैकडो आदमी घायल हो गये, बहुत बडी सख्या मे लोग गिरफ्तार हुए। पुलिस के लाठी चार्ज और घुडसवारो के प्रहार के बीच जाकर महिलाओ ने मोनुमेंट पर राष्ट्रीय झडा फहरा दिया और सैकडो की सख्या मे गिरफ्तार हुई। इस प्रकार वह स्वाधीनता-दिवस अपने ढग का अपूर्व, अनोखा था। प० मोतीलाल, जोकि उन दिनो बहुत बीमार थे और काग्रेस के डिक्टेटर भी थे, जब बगाल के इस दिवस की खबरें मिली तो वह बहुत प्रसन्न हुए, कारण दिवस की योजना उनके परामर्श से बनाई गई थी। वह उस समय कलकत्ते मे इलाज करा रहे थे। यह सब सुभाप-बाबू के नेतृत्व और लोक-प्रियता के कारण सम्भव हो सका। इसके बाद बहुत शीघ्र ही गाधी-इर्विन-समझौता हो गया और उसके अनुसार सत्याग्रह के सारे बंदी छोड दिये गए। सुभापबाबू भी जेल से बाहर आ

गये । अब यह सवाल पैदा हुआ कि सुभाषबाबू गाधी-इर्विन-समझौते को स्वीकार करते है या उसका विरोध करते है । सारा देश सुभाष की ओर देख रहा था ।

उस समय बगाल काग्रेस की दो पार्टियो मे सेन गुप्त की पार्टी तो समझौते का समर्थन करती ही थी, इसलिए तथा सुभाषबाबू का जो रवैया रहा था, उससे लोगो ने ऐसा माना कि शायद सुभाषबाबू समझौते का विरोध करेंगे । यह एक लम्बा किस्सा है और इसके भीतर बहुत बातें हे ।

सुभाषबाबू काग्रेस की विषय-निर्वाचिनी समिति मे बोलने को खडे हुए तबतक कोई यह नही जानता था कि सुभाषबाबू समझौते का समर्थन करेंगे, पर उन्होने व्यक्तिगत रूप से समझौते का विरोध करते हुए भी जब यह कहा कि देश की एक आवाज हो, काग्रेस का एक निश्चय हो और गोलमेज परिषद मे हमारे एक प्रतिनिधि गाधीजी ही हो और उनकी आवाज ही काग्रेस की आवाज मानी जाय, तो सारा पडाल तालियो से गूज उठा और लोग चकित हो गये, खासकर जो लोग भीतर-भीतर समझौते के विरोधी थे और किसीके नेतृत्व की खोज कर रहे थे, वे सब निराश हो गये और सर्वसम्मति से समझौते का प्रस्ताव पास हुआ । सेनगुप्त तथा उनकी पार्टी के लोग बडे निराश हुए, क्योकि वे यह मानते और दिखाना चाहते थे कि बगाल मे वे लोग ही गाधीजी के तथा काग्रेस के समर्थक है और नगण्य-सा जो विरोध है, उसपर वे विजय प्राप्त कर सकते हे । सुभाषबाबू ने समझौते का समर्थन करके ये सब बाते व्यर्थ कर दी । इस काग्रेस के सभापति वल्लभभाई पटेल थे । जब वर्किंग कमेटी का चुनाव हुआ तो वर्किंग कमेटी मे उन्होने सुभाषबाबू को न लेकर सेनगुप्त को ही लिया । इससे इस समझौते के भीतर जो लोग थे, जिन्होने इस बात का प्रयत्न किया था कि सुभाषबाबू गाधीजी का समर्थन करें, जो सुभाषबाबू को वर्किंग कमेटी मे भी देखना चाहते थे, उनको बडी निराशा और दु ख हुआ, सुभाषबाबू भी इससे सतुष्ट तो नही थे । जो हो, सच कहा जाय तो सुभाषबाबू के साथ तो इस तरह का व्यवहार चाहे किसी कारण से हो, बराबर होता रहा ।

यह लम्बा प्रकरण है और इसकी बहुत-सी बाते है, पर इतना तो नि सन्देह कहा जा सकता है कि सुभाषबाबू मे किसीसे कम देश-भक्ति नही थी और उनका त्याग, उनकी योग्यता उनकी कर्म-शक्ति भी किसी से कम न थी। उनको हरिपुरा-काग्रेस का सभापति बनाया गया। काग्रेस के कराची-अधिवेशन और हरिपुरा के बीच सात वर्ष का फर्क है। इस दौरान सुभाषबाबू का अधिकतर समय जेलो मे और विदेश मे बीमारी का इलाज कराने मे बीता।

सुभाषबाबू के हिन्दी-प्रेम की एक बात यहा लिखना आवश्यक है। सुभाषबाबू हिन्दी लिख-पढ सकते थे, बोल सकते थे, पर वह इसमे बराबर हिचकते और कमी महसूस करते। वह चाहते थे कि हिन्दी मे वह हिन्दीभाषी लोगो की तरह ही सब काम कर सके। एक दिन उन्होने कहा कि यदि देश मे जनता के साथ राजनीति करनी है, तो उसका माध्यम हिन्दी ही हो सकती है। बगाल के बाहर मै जनता मे जाऊ तो किस भाषा मे बोलू ? इसलिए काग्रेस का सभापति बनकर मैं हिन्दी खूब अच्छी न जानू तो काम नही चलेगा। तुम एक मास्टर मुझे दो, जो मेरे साथ रहे और मेरा हिन्दी का सारा काम कर दे तथा जब मैं चाहू और मुझे समय मिले तब मैं उससे हिन्दी सीखता रहूं। श्री जगदीशनारायणजी तिवारी को, जो मूक काग्रेसकर्मी थे और हिन्दी के अच्छे शिक्षक थे, सुभाषबाबू के साथ रखा गया।

जो लोग राजनीति के भीतर की बात जानते है, उन्हे पता है कि सुभाष-बाबू को गाधीजी कितना प्यार करते थे और वह भी गाधीजी को कितना मानते थे। पर सुभाषबाबू कभी किसीके आगे समर्पण नही कर सके। वह 'अकेला चलो' के मूर्त्त रूप थे और अपने मन की बात करने के लिए उन्होने कितना दु ख और कष्ट सहा, इसकी कल्पना नही की जा सकती। वह पुलिस के पहरे के बीच से गायब होकर देश की स्वाधीनता प्राप्त करने के उद्देश्य से भारत के बाहर चले गये। कितना कष्ट, कितना हैरानी, कितनी जोखिम ली उन्होने अपनी मान्यताओ के लिए और किस प्रकार का सगठन किया आजाद हिन्द फौज का बाहर जाकर! देश की स्वाधीनता के लिए इस बहादुर आदमी ने क्या नही किया, कौन से ऐसे कष्ट थे, जो उन्होने नही सहे, कौन-सी ऐसी जोखिम थी जो उन्होने देश के लिए नही उठाई। होश सभालने के पहले दिन से तरुणाई की सारी हविस, घर का सारा सुख, मा, भाई, बहनो का सारा दुलार, सारी आशाए, सारा सुख, सारा आराम, सबकुछ छोडकर जीवनपर्यंत इस तरुण तपस्वी ने देश-विदेश की खाक छानी, नाना प्रकार की यातनाए सही और मान-अपमान भी सहा। मुझे ऐसा लगता है कि सुभाषबाबू का नाम, नेताजी का नाम, शायद देश के सब सेनानियो से अधिक दिन जीवित रहेगा।

६ : धुन के धनी राममनोहर लोहिया

डाक्टर लोहिया की मृत्यु से देश की राजनीति से स्वतत्रता-सग्राम की जीवित कडी टूट गई। स्वतत्रता-सग्राम के बडे योद्धा एक के बाद एक जा रहे है। केन्द्र के आज के कई बडे वजीरो का स्वतत्रता-सग्राम मे हिस्सा रहा है, पर वे अग्रणी योद्धाओ मे न थे। इसलिए आज एक पुराने आदमी को डा० लोहिया की मृत्यु से जो दु ख हुआ है, वह आज

की नई राजनीतिवाले व्यक्ति के दुख से भिन्न है। पुराना आदमी डा० लोहिया को, स्वतत्रता-संग्राम के आदर्शों को, नई राजनीति मे प्रतिष्ठित करनेवाले अग्रणी नेता के रूप मे देखता है, जबकि नया आदमी उन्हे जडमूल से क्राति पैदा करनेवाला मानता है। इन दोनो धारणाओं मे साम्य है, क्योंकि स्वतत्रता-सगाम की लडाई को गाधीजी ने केवल अग्रेज से लडने तक ही सीमित नही रखा था, उनका उद्देश्य भारतीय जीवन की जडता को भी समाप्त करना था।

स्वतत्र होने के बाद अग्रेज से लडाई की बात खत्म हो गई, पर जडता की बात बनी रही। इस जडता को खत्म करने और भारतीय जीवन को चलायमान करने के लिए डाक्टर लोहिया ने देश को बुनियादी समस्याओं के प्रति जागरूक किया। उनके तरीको से मेरे जैसे लोग अपने खास किस्म के सस्कारो की वजह से पूरी तरह एकात्म नही हो सकते थे, पर उनके आदर्शों मे गाधीजी की जो झलक मिलती थी, उसे नजरदाज भी नही कर सकते थे। इसीलिए मेरे जैसे लोगो का डा०लोहिया के प्रति रुख दूर से ही मुग्ध या आकर्षित होने का था। आज जब वह इतनी कम उमर मे चले गये, तब यह आकर्षण और भी प्रबल हो उठता है और मन मे गहरा अवसाद उमडता है कि एक ऐसा व्यक्ति, जो देश को स्वधर्म की ओर बढा सकता था, चला गया।

गाधीजी ने एक बार कहा था—जवाहरलाल चाहता है कि अग्रेज चले जाय, पर अग्रेजियत रहे, लेकिन मै चाहता हूँ कि अग्रेज रहे और अग्रेजियत चली जाय। आजादी के बाद रह-रहकर लगता है कि स्वतत्रता का क्या यही अर्थ था कि अग्रेजो के जाने के बाद हम उनके जैसे बन जाय। अग्रेजियत और अंग्रेजी के प्रति मोह की भी एक हद हो सकती थी!

अग्रेजियत और विदेशी सहायता के माहौल मे डा० लोहिया ने स्वदेशी भाषा के सवाल को उसी परिप्रेक्ष्य मे रखा, जिसमे गाधीजी ने रखा था। इस मामले मे वह गाधीजी से एक कदम आगे थे, क्योंकि गाधीजी का दृष्टिकोण कही सत-महात्मा का भी होता था, जबकि लोहिया का दृष्टिकोण व्यावहारिक आदर्शवादी का था। डाक्टर लोहिया

ने भाषा को जिन्दगी से जोडा, इसीलिए हिन्दी साहित्य मे आगे आकर वह उत्कृष्ट गद्य लेखको मे भी गिने जायगे। हिन्दी के नये लेखको पर डाक्टर लोहिया की भाषा का असर दीखने लगा है।

डा० लोहिया का भापा-सबधी दृष्टिकोण उनके चितनशील व्यक्तित्व की खोज और उपज था। हमारे यहा समाजवादी और साम्यवादी विदेशी पोथियो और सिद्धातो से इतने आक्रात रहते है कि वे हमारे देश के अनुरूप सोच नही पाते। डा० लोहिया ने हिंदी से कही ज्यादा जर्मन और अग्रेजी पढी होगी। लेकिन उन्होने इस पठन के दौरान हमारी जिन्दगी से विदेशी भाषाओ की दूरियो को नापा और जाना कि हमारे लिए ज्ञान और विकास अपनी ही भापा से सभव है। भाषा के बारे मे उन्होने हमारे विचारो मे गहरा परिवर्तन किया है। आज शायद अग्रेजी-प्रेमियो के शोर-शरावे और देश की भ्रष्ट राजनैतिक स्वार्थपरता की वजह से भापा का सवाल पेचीदा क्यो न हो जाय, पर स्थिति एक दिन स्पष्ट होकर रहेगी। अग्रेजी के समर्थन की तरह-तरह की वाते आज वैसी ही लगती हे जैसी कि 'होमरूल' और 'डोमिनियन स्टेटस' आदि की वाते पहले लगा करती थी। लगता है, अभी भी हमारे देश मे गुलामी की गहरी तलछट रह गई है। एक दिन हिन्दुस्तान ने पूरी आजादी का सकल्प किया था और एक दिन वह निश्चय ही पूर्ण रूप से अपनी भाषा को स्थापित करने का भी सकल्प करेगा। आज अग्रेजी के हिमायती डाक्टर लोहिया की भाषा-सबधी मान्यताओ को चुनौती देने मे असमर्थ है और वे उसपर पीछे से तथा बगल से प्रहार करते है, जनसघ की साम्प्रदायिकता तथा देश मे फूट का हौवा खडा करके। पर डा० लोहिया की हिन्दी-भक्ति और जनसघ की हिन्दी-भक्ति का फर्क वैसा ही है, जैसा कि कृष्ण की मूर्ति के प्रति मीरा की भक्ति मे और चढावा पानेवाले पुजारी की भक्ति मे है।

यह एक मजे की वात है कि भक्ति के मामले मे डा० लोहिया के व्यक्तित्व मे सगुण और निर्गुण दोनो वाते मिलती है। उनका औघड जीवन निर्गुण था, जबकि राजनीति सगुण। औघड जीवन उन्होने पिता श्री हीरालालजी से वसीयत मे पाया था। हीरालालजी का राष्ट्रीय

आन्दोलन मे बड़ा हिस्सा रहा। नमक-सत्याग्रह के समय धरासणा के नमक-धावे मे उनकी सक्रिय भूमिका थी। हीरालालजी जैसे निस्पृह और औघड व्यक्तियो को तो हमारा समाज अनायास ही कभी मौके-बेमौके याद करता है, पर उनके जैसे ही लोगो के बूते पर आजादी की यह इमारत खडी है।

१९४२ से पहले डा० लोहिया की देश की राजनीति मे भूमिका पृष्ठभूमि मे रही। १९४२ मे वह केवल बत्तीस वर्ष के ही थे, पर इससे पहले काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के भीतर वह आचार्य नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश नारायण और मेहरअली जैसे लोगों के साथ स्वातन्त्र्य आदोलन को तर्कसगत, बुद्धिवादी और वैज्ञानिक आधार प्रदान करने की चेष्टा मे जुटे रहे। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के विदेश विभाग के वह सचिव बने। उन दिनो की याद आने पर लगता है कि घोर साधनहीनता के बावजूद काग्रेस का विदेश विभाग आज के हमारे विदेश मन्त्रालय से कही अधिक सक्रिय और जागरूक था। १९४२ की लड़ाई के दौरान डा० लोहिया की भूमिका चिंतक और बुद्धिवादी के अलावा कर्मवीर की भी थी। चिंतन से कर्म की ओर उनका रुझान बढ़ता ही गया, जिसका नतीजा यह हुआ कि १९४८ की बाद की राजनीति मे उनके जैसा सक्रिय नेता विरला ही हुआ है। देश के बुद्धिजीवियो और चिंतको के लिए डा० लोहिया का जीवन अनुकरणीय है, क्योंकि हमारे देश मे कर्म के बिना चिंतन एकदम अर्थहीन और नि सार है। लगता है, देश मे आज भ्रष्टाचार, आदर्शहीनता और मूल्यहीनता का जो बोलबाला है, उसमें राजनीति किसी दिशा मे नही चल पा रही है। वह गड़बड़ाती हुई चलती है और ऐसा लगता है कि वह हमें गर्त मे ले जायगी। विदेशी सिद्धांतो के किताबी आधार पर हमने इन वर्षो मे जो किया, उसका नतीजा आज सामने है। ऐसे मे डा० लोहिया देश को दिशा प्रदान कर रहे थे। अगर हम उस दिशा मे चलें, तो इतिहास मे उनका क्या स्थान होगा, यह कहने की जरूरत नही।

संस्कृति और साहित्य की विभूतियां

१ : साधु वैज्ञानिक प्रफुल्लचंद्र राय

पिछली सदी ने हमे अनेक महापुरुष दिये। हर दिशा मे देश के हर प्रात मे अनेक ऐसे लोग पैदा हुए जिनकी तुलना सहज ही दूसरो से नही की जा सकती। वगाल मे तो विज्ञान, शिक्षा, साहित्य, कला, इतिहास, न्याय, कानून आदि अनेक विपयो मे विशेप-विशेप लोग पैदा हुए। इन विशेष लोगो मे से कई की शताब्दिया हमने मनाई है और आगे मनाई जायगी। इन्ही महापुरुषो मे आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय का नाम विशेष भाव से लिया जा सकता है। आचार्य पी० सी० राय ने विज्ञान मे वहुत बडा काम किया, यही उनकी विशेषताए नही है। वह बहुत वडे वैज्ञानिक तो थे ही, विज्ञान की उन्होने वहुत वडी सेवा की है, इस सर्वमान्य वात के अलावा वह एक साधु पुरुष थे, देश-सेवक थे, बहुत वडे शिक्षाविद थे। वह सरल, सादे, सच्चे, निरभिमानी और भोले स्वभाव के आदमी थे। जिन लोगो ने उन्हे नजदीक से देखा है, वे जानते है कि उनका वच्चो जैसा स्वभाव था। उन्होने जो कमाया, उसका इतना कम हिस्सा अपने लिए खर्च किया कि देश का साधारण-से-साधारण आदमी भी उससे कुछ ज्यादा ही करता होगा। मैने सुना है कि वह अपने लिए केवल पच्चीस रुपये महीना लेते थे, वाकी सव-का-सव विद्यार्थियो और देश के काम मे लगाते रहे। उन्होने कभी अच्छे कपडे नही पहने, गाडी, मोटर आदि कोई वाहन अपने लिए नही रखा, यहातक कि वहुत वृद्ध हो जाने पर अपनी सेवा या अपने खुद के काम के लिए कोई नौकर नही रखा।

इसका एक उदाहरण देना उपयुक्त होगा। वह काफी वृद्ध हो गये थे। आखो से कम दिखाई देने लगा था और रात मे थोडी घबराहट-सी भी होती थी। उनके पास कोई आदमी था नही, विवाह उन्होने किया ही नही था। उनके अनेक शिष्य थे, जिन्होने विज्ञान की शिक्षा उनके चरणो मे बैठकर प्राप्त की थी। उनमे से कई तो बहुत बडे-बडे लोग भी थे। श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त उनके बहुत प्रिय शिष्यो मे थे। सतीशबाबू के त्याग, तप और काम के बारे मे कहा या लिखा जाय तो वह एक बहुत बडा लेख या पुस्तक हो सकती है, पर यहा तो केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि बगाल मे गाधीजी के सबसे बडे अनुयायी वही है। श्री सतीश-बाबू से उन्होने कहा, "सतीश, आमा के एकटी लोक दावो जे रात्री ते आमार काछे थाकते पारे।[1]

सतीशबाबू ने एक अपना परखा हुआ आदमी उनके पास भेज दिया। वह आदमी रात मे उनके पास सोया। सुबह उठे तो उस आदमी से कहा, "तुम जाओ।" उसने बडी नम्रता से कहा कि सतीशबाबू ने मुझे आपकी सेवा करने को भेजा है, तो कहने लगे, "दिने तो आमार किछु कष्टो नाई दिने तोमाके केनो राखबो।"[2]

इसी प्रकार एक दिन मैं जमनालालजी को लेकर उनके पास गया तो नारियल की रस्सी की खाट पर दरी बिछाकर सोये हुए थे। तीन कुरसिया पडी थी, जिनमे एक काठ की थी, दो लोहे की। वह कुरसिया बहुत ही घटिया थी। जमनालालजी का हाथ पकडकर कहने लगे, "तुमी ओई काठेर चेयरे ते बोसो एई आमार ड्राइंग रुम।"[3] मुझे तो हाथ पकडकर अपनी उस खाट पर ही बैठा लिया और कहा, "तुमी तो घरेर लोग एखाने बोसो"[4] फिर एक कोने मे स्टोव पडा था। कहने लगे, 'एइ आमार किचन।"[5]

साधु वैज्ञानिक प्रफुल्लचन्द्र

सन् १६२८ की बात है। नागपुर विश्वविद्यालय . दीक्षात भाषण देने के लिए बुलाया था। वह यहा गये तो उनको मालूम हुआ कि गाधीजी वर्धा मे है। उन्होने गाधीजी से मिलने की इच्छा प्रकट की और बापूजी ने उनको बुला लिया। सयोग से मैं भी वही था। सुना आचार्य राय वहा आनेवाले है, तो जमनालालजी के साथ बापूजी के पास चला गया। बापूजी तो नीचे जमीन पर एक छोटी-सी गद्दी पर बैठते थे, उसपर ही बैठे रहे। लेकिन आचार्य राय के लिए एक चौकी अपने पास रखवाई, तो जमनालालजी ने पूछा, यह क्यो रखवाते है ? बापूजी हॅसे और बोले कि आचार्य राय तो सम्मानीय है न, उनको ऊचा बैठाना चाहिए, पर वह बात करते समय इतने भावमय हो जाते है कि सामनेवाले के शरीर पर हाथ मारकर बात करने लगते है। आचार्य राय आये, बापूजी ने खडे होकर उनका स्वागत किया और उस चौकी पर उनको बैठाया। बातचीत होने लगी, तो वही हुआ जो बापूजी ने कहा था। आचार्य राय ने जब अपना हाथ मारने के लिए बापूजी की तरफ किया तो बापूजी ने कहा कि आप चाहे जितना हाथ मेरी ओर करे, वह मेरे तक पहुच नही पायगा। इसका इन्तजाम मैंने पहले से आपको चौकी पर बैठाकर कर लिया है और चौकी को इतनी दूर रखा है कि आपका हाथ मुझतक नही पहुच पावे। आचार्य राय बहुत हँसे और बापूजी तो मुक्त हँसी हँसने के आचार्य ही थे। बडा अच्छा विनोद रहा। इसी प्रकार की अनेक घटनाए है। एक मीटिंग का हम लोगो ने उनको सभापति बनाया। मैंने कहा, "मैं आपको लेने के लिए गाडी लेकर आ जाऊगा।" बोले, "आमी कि जमाई जाके गाडी पठाते होय निए जेते होय।"[1]
फिर बोले, "आमार एकटी बन्धु बिकाले आमार जोने गाडी पाठाय ओई गाडी ते आमी समय मोतो नीजे ही एसे जावो।"[2]

इसी प्रकार एक दिन उनसे मैंने और स्वर्गीय भाई बसतलाल

---

१. क्या मै जमाई हूं जिसके लिए गाड़ी भेजने की जरूरत होती है !
२. मेरा एक दोस्त शाम को मेरे लिए गाडी भेजता है, उसी गाडी मे मै समय पर अपने-आप आजाऊगा।

मुरारका ने कुछ बाते करने के लिए समय मागा तो बोले कि, रेड रोड स्टेच्यू पर मैं शाम को सात बजे एक बन्धु की घोडा-गाडी मे जाता हू, वहा आ जाओ। हम लोग गये। एक खादी का दुपट्टा, जो वह रखते थे, उसको बिछाकर लेटे हुए मिले। एक-दो आदमी पास बैठे थे। आचार्य राय के कपडे साधारण होते थे। एक खादी की धोती, जो घुटनो से बहुत थोडी-सी ही नीची रहती और एक खादी का कोट और एक दुपट्टा या चादर, जो कह लीजिये। ये तीनो कपडे सदा एक-से नही रहते थे। दुपट्टा धोया हुआ है, तो धोती मैली है, धोती साफ है, तो कोट मैला है। शायद ही सब कपडे वे एक साथ कभी बदलते थे। उनको कपडो का या अन्य ऐसी बातो का ख्याल नही रहता था। दाढी अपने-आप कैंची से काट लेते थे। नाई को शायद ही कभी बुलाते। रग उनका हमारे राजेन्द्रबाबू जैसा था। लम्बे तो थे, पर दुबले-पतले थे। दाढी रखते थे, पर बहुत छोटी और बेतरतीब। सिर के बाल वैसे ही, सफेदी मे कुछ कालो लिये हुए, यानी उनको देखकर कोई भी आदमी कल्पना नही कर सकता कि यह आदमी आचार्य पी० सी० राय हैं।

उनके हाथ को पकडकर कहने लगे, "आजकल कार मेयरा छेले चायना"[1] और भी कुछ कहा। लडकिया हँसने लगी। वह इतने निर्दोष थे कि वह क्या कहते है, इसका कोई आदमी बुरा नही मानता था। एक बार कहने लगे कि लोग कहते हैं कि मैं मारवाडियो का विरोधी हू। मै कहता हू कि मैं मारवाडियो का प्रशसक हूं। बंगालियो से कहता हूं कि तुम इनके जैसे बनो, नही तो इनके सामने वच नही सकोगे। एक बगाली नोजवान पास ही खडा था। उसके पेट मे हाथ का घूसा-जैसा मारकर कहने लगे कि इसका पेट खाली है। यह भरना नही जानता। यह बचेगा नहीं। इसको एक हजार रुपया उधार दे दिया जाय और कह दिया जाय कि इस रुपये से व्यापार करो और कमाओ तो जानते हो यह क्या करेगा ? दो कप चाय पीता था तो चार पीने लगेगा। इसके पास दो-चार दोस्त है, तो दस पाच आने लगेगे। एक खबर का कागज पढता था, दो पढने लगेगा। जवतक वे रुपये रहेगे, इसका ऐसा ही चलेगा। तुमको एक हजार रुपया दे दिया जाय और कह दिया जाय कि इन रुपयो से व्यापार करो तो तुम शाम को हिसाब करके देखोगे कि एक हजार एक हैं कि नौ सौ निन्यानवे। यदि नो सौ निन्यानवे है, तो तुम रात मे अच्छी रोटी नही खाओगे। दूसरे दिन से अधिक परिश्रम करने और अधिक वचाने की कोशिश करोगे, जिससे वे रुपये नौ सो निन्यानवे न हो, एक हजार एक हो। मैं इस कगाल भूखे वगाली से कहता हू कि तुम इस मारवाडी से वचो और इसका अनुकरण करो। तुम्हारी जातिवाले कहते है कि मै मारवाडी का विरोवी हूं। इसी प्रकार की अनेक बाते मौके-मौके पर उनसे हो जाती। सारी वातें प्राय व्यक्तिगत ही है और ऐसे सस्मरण व्यक्तिगत ही होते हैं।

सन् १९३६ की वात है। मेरी लडकी का विवाह था। मेरी इच्छा थी कि आचार्य राय उसमे अवश्य आये और सवसे पहला आशीर्वाद लडके-लडकी को वह दे। उनसे ऐसा कहने मे सकोच होता था। वह वृद्ध तो थे ही, साथ ही ऐसे कामो मे कम जाते थे। मैंने सतीशवावू से कहा कि आप

---

१. आजकल की लडकिया लड़के नही चाहतीं।

मेरी ओर से उचित समझे तो कहे। उन्होने कहा और वह खुशी-खुशी आये। उनको ही सबसे पहले लड़की-लडके ने प्रणाम किया, तो उन्होने जो आशीर्वाद दिया वह अपने-आपमे इतना महान है कि आज भी वह दृश्य और वे वाक्य मैं भूल नही पाता। उन्होने सिर पर हाथ रखकर दो वाक्य कहे—"धर्मे थाको, सुखे थाको।"[1]

आचार्य राय अपने जीवन मे स्वदेशी भावना और परदुखकातरता के मूर्तिमान स्वरूप थे। उन्होने अनुभव किया कि देश मे सभी चीजे परदेश से आती है, उनके स्थान परदेश की बनी चीजे काम मे लाई जाय। एक वैज्ञानिक के नाते पहली प्रतिक्रिया विदेशी दवाओ के बारे मे हुई। इसलिए उन्होंने बगाल केमिकल की स्थापना की। शायद बगाल केमिकल भारत मे दवाओ तथा केमिकल का सबसे पुराना प्रतिष्ठान है। इसके अलावा वह प्रत्येक भारतीय वस्तु के प्रचार-प्रसार का प्रयत्न करते थे। दुर्भाग्य से बगाल बाढ का क्रीडा-स्थल रहा है। यहा बाढ और अकाल अनेक बार आते है। मुझे जहातक याद है, आचार्य राय के जीवन मे ऐसा एक भी मौका नही आया जबकि अकाल और बाढ के समय उन्होने बड़ा-से-बडा सगठन करके लाखो रुपयो के सामान से सहायता न की हो। ऐसा हो गया था कि बहुत-से गलत लोग भी आचार्य राय का चित्र तथा उनके नाम की अपील लेकर बाढ और अकाल-पीड़ितो की सहायता के लिए रास्तो मे खड़े हो जाते थे। एक बार की बात है कि श्री घनश्यामदासजी बिड़ला आफिस से बाहर जा रहे थे। रास्ते मे आचार्य राय के नाम से लोग गाना गाते हुए अकाल के लिए चन्दा माग रहे थे। श्री घनश्यामदासजी की गाड़ी के पास वे आये तो उन्होंने सोचा कि इनको क्या दे, पाकेट मे रुपये नही थे। अपनी घड़ी खोलकर उनको दे दी। दूसरे दिन रु० १००१ के साथ एक पत्र लिखा कि कल शाम को आपकी ओर से चन्दा मागनेवाले लोग मुझे रास्ते के मोड़ पर मिले। मैंने अपनी घड़ी उनको दे दी। यह एक हजार रुपये भेज रहा हू। वह घड़ी भिजवा दीजिए। आचार्य राय ने लिखा कि मैंने तो कोई ऐसे लोग नही भेजे है, जो रास्ते

१. धर्म मे रहो, सुख मे रहो।

मे चन्दा मागे और मै इस बात का सार्वजनिक रूप से खण्डन भी कर रहा हू। इस प्रकार आचार्य राय का नाम ही सकट-त्राण हो गया था।

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय से मानवता सुन्दर होती थी, उनकी सेवाए और उनकी देन तथा सबसे बडी उनकी सरलता, साधुता, हर आदमी को पवित्रता की ओर ले जाती थी।

२ : प्रो० कर्वे-दम्पति

प्रोफेसर कर्वे के दर्शनो की तथा उनका आश्रम और कालेज देखने की मेरी कई वर्षो से इच्छा थी। इस बार (१९३८ मे) पूना जाने का मौका मिला, तो वहा पहुचते ही मैं सबसे पहले अपनी लडकी पन्ना के साथ उनके दर्शनोके लिए गया। पूना से चार-पाच मील पर हिगणे नामक गाव मे सन् १९०० ई० मे कर्वेजी ने इस आश्रम की स्थापना की थी। उस समय जिस छोटी-सी कच्ची झोपडी मे इसकी स्थापना हुई थी वह भी हम लोगो ने देखी। आज तो इस स्थान पर एक विशाल भवन, कई बोर्डिंग-हाउस, बालिकाओ के खेलने के लिए बहुत बडा उद्यान तथा सभा-हाल आदि कई आकर्षक इमारते तथा नाना तरह की दूसरी चीजे बनी हुई हैं। जिस समय यह प्रयत्न शुरू किया गया था, उस समय चारो ओर अन्धकार था और उसमे प्रकाश फैलाना बहुत ही दुष्कर कार्य था, लेकिन महापुरुषो की तपश्चर्या का फल बिना हुए नही रहता। साधारण लोग तो चीज का स्थूल रूप सामने आने पर ही उसे पहचानते हैं, परन्तु त्यागी और सच्चा काम करनेवाला आदमी किस इच्छा और भावना के साथ काम शुरू करता है, उसमे किस लगन के साथ जुट जाता है और मुसीबते उठाता हुआ किस तरह उस चीज को अपने लक्ष्य तक ले जाता है तथा किस तरह मुसीबतो और विघ्न-बाधाओ के समय भी अपने मन मे कल्पना द्वारा सुखद और सुन्दर स्वप्न देखा करता है, इसको

वही जानता है। छोटे-से बीज के अन्दर जिस तरह एक वट वृक्ष और सारे फल समाये हुए रहते है, उसी तरह उस तपस्वी कर्मयोगी के मन मे ये चीजें समाई हुई रहती है। वह अपनी कल्पनाओ द्वारा छोटे-से बीज मे बडे-से वृक्ष की शीतल छाया और सुन्दर फल देखा करता है और उसमे सुखी रहता है। अपनी कल्पनाओ द्वारा आकाश मे विचरण करता हुआ वह बल प्राप्त करता है और उसी बल से वह अपने मार्ग की कठिनाइयो को धैर्यपूर्वक सहता हुआ अपने लक्ष्य-स्थान पर जा पहुचता है।

स्वर्गीय लाला देवराजजी की तरह श्री कर्वेजी को भी बहुत-से विरोधो का सामना करना पडा है। कितनी कठिनाइया आई, लेकिन ये लोग अपनी आशा और श्रद्धा के बल पर साहस और धैर्यपूर्वक डटे रहे और उसीके फलस्वरूप आज जालन्धर और पूना मे सस्थाओ के रूप मे मातृ-जाति उन्नति के लिए दो महान् अनुष्ठान खडे कर दिये है। जिस तरह बगाल मे सती-प्रथा के विरुद्ध कानून बनाकर राजा राममोहन राय और विधवा-विवाह के बारे मे कानून बनाकर प० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने मातृ-जाति का बहुत बडा उपकार किया और आज मातृ-जाति के भक्तो के उपास्य देव बन गये है, उसी तरह, बल्कि उससे भी अधिक पजाब के लाला देवराजजी और महाराष्ट्र के कर्वे महाराज प्रत्येक मातृ-सेवक के उपास्य देव बने हुए है।

हिंगणे का आश्रम हम लोगो ने देखा। हमे वह बहुत ही अच्छा लगा। उसका पूरा विवरण लिखने के लिए बहुत समय और स्थान चाहिए। हमे तो यहा कर्वे महाराज के दर्शन का ही सस्मरण लिखना है, इसलिए उसे छोड देते है। वहा से महिला-कालेज मे आये, जो हिंगणे जाते समय रास्ते मे ही पडता है। यही कर्वे-दम्पति रहते है। हमे उनके दर्शनो की बडी तीव्र इच्छा थी। इसलिए कालेज के अहाते मे प्रवेश करते ही हमने यह जानने की कोशिश की कि वे कहा है। कालेज तो बन्द था, लेकिन वहा के चपरासी ने हमे इशारे से बताया कि वह उस जगह है। चपरासी के बताये हुए छोटे-से टीन के घर के पास पहुचे, तो सामने ही एक बहुत सादी-सी बूढी स्त्री, जिसके सब बाल सफेद हो गये

थे, कमर झुक गई थी, चेहरे पर झुरिया पड गई थी, बैठी मिली। हमने अनुमान से समझ लिया कि ये श्रीमती कर्वे होगी। हमारा अनुमान सच निकला। हमारे प्रणाम करने पर उन्होने मराठी मे पूछा—कहिए, क्या काम है ? हम लोगो ने कर्वे महाराज के दर्शन की इच्छा प्रकट की, तो उन्होने कहा कि वे सोये है। तुम लोग एक-दो मिनट ठहरो, मैं उन्हे जगाती हू। जब हमने कहा कि नही माताजी, उन्हे जगाइए नही, हम लोग थोडी देर ठहर जायगे, उनको तकलीफ नही होनी चाहिए, तो उन्होने बडी सरलता से कहा—तकलीफ किस बात की, यह तो हम लोगो का काम ही है। भीतर जाते ही उन्होने हमे तुरन्त बुला लिया। इस घर मे, जिसमे ये दम्पति निवास करते है, केवल दो कमरे है। रसोई आदि सब काम उसीमे होता है। वहापर एक बेत की कुर्सी, दो लोहे की पुरानी खाट, रसोई के थोडे वर्तन और कुछ कपडो के सिवा हमने कुछ नही देखा। शायद एक-दो किताबे भी थी। खाटो पर जो कपडे बिछे हुए थे, वे पाच-सात वर्ष पहले के बनाये हुए जरूर होगे। शायद इससे भी ज्यादा पहले के हो। कर्वे महाराज एक खाट पर बैठे थे। बहुत दुबले, नाटे कद के, इतने सरल और सीधे है कि अपने-आपको तो कुछ भी नही समझते, यानी पूरे-पूरे निरभिमानी है। ऐसे महापुरुष को तथा इनके रहन-सहन को देखकर हम चकित-से हो गये और हमारा हृदय और मन बार-बार इनके चरणो पर झुकने लगा। मन मे कल्पना हुई कि इतना सादा और इतना सरल कोई दूसरा महापुरुष भी हमने देखा है या नही ? तो बगाल के आचार्य प्रफुल्लचद्र राय याद आये। कुछ देर तक उनसे बात होती रही। हिगणे के आश्रम के बारे मे, महिला-कालेज़ के बारे मे तथा वहा की शिक्षा के बारे मे बाते हुई। इतने मे माताजी ने पन्ना और मेरी छोटी बच्ची विजय को कुकुम लगाया और हम सब को नारियल के खोपडे का चूरा चीनी मिलाया हुआ प्रसाद दिया। न मालूम श्रद्धा का कारण था या उन पवित्र हाथो की खास बात थी, यह प्रसाद हमे इतना स्वादिष्ट लगा कि कुछ कहते नही बनता।

कर्वे महाराज ने कहा कि कालेज तो बन्द है और सब लोग बाहर चले गये है, पर तुम लोगो को यहा की सब चीजे दिखाता हू। मैंने कहा

कि महाराज, आप कष्ट न करें तो वे ही शब्द, जो माताजी ने कहे थे, फिर निकले कि तकलीफ किस बात की, यह तो हमारा काम है। इन अस्सी वर्ष के बूढे दम्पति का उत्साह, इनकी सेवा का सकल्प कितना दीर्घ, कितना महान् तथा कितना शिक्षाप्रद है। कर्वे महाराज उठे और अपनी चप्पल पहनी, जो कम-से-कम चार-पाच जगह सिलायी की हुई थी, न मालूम वह कितने दिनो से चल रही है। मै यह सब बाते सच लिख रहा हूं, इसमे जरा भी अतिशयोक्ति नही है। इस दम्पति ने सच-मुच मे महात्मा गाधी के दरिद्र-नारायण की पूजा करना सीखा है। सब साधनो का जोगाड करते हुए एक महान् सस्था का निर्माण करते हुए कितना सादा और कितना सरल जीवन यापन करने का व्रत ले रखा है। उनके साथ महिला-कालेज देखने गये। प्रत्येक चीज उन्होने दिखाई तथा समझाई। कालेज की बातो का विवरण हम यहा नही देंगे। हमारा उद्देश्य तो कर्वे महाराज के दर्शन का वर्णन करना है।

वहा से लौटने के बाद फिर उस टीन के घर मे आकर हम लोग बैठे, तो माताजी ने कहा कि मुझे बाहर जाना है, क्या तुम लोगो के साथ चल सकती हूं? हम लोगो को तो गुड मे गोविन्द मिल गये। कर्वे महाराज को प्रणाम करके माताजी के साथ वहा से विदा हुए और रास्ते मे उनसे बाते होती रही। माताजी ने कहा कि मैने आज से चालीस वर्ष पहले नर्सिंग पास किया था और नर्स का काम करती थी। मैने उनसे प्रार्थना की कि आप और कर्वे महाराज एक बार कलकत्ता आयें तो उन्होने कहा कि हम लोगो के पास पैसे कहा है? मैने अपनी मूर्खता से कह दिया कि इसका प्रबन्ध तो हम लोग कर लेंगे, तो उन्होने कहा कि हम तो दूसरो का पैसा सस्था के लिए ही लेते हैं। इस प्रकार यह यात्रा समाप्त हुई। उस महान अवसर की स्मृति मन पर सदा अंकित रहेगी।

३ : विश्वकवि रवीन्द्रनाथ

गुरुदेव के प्रथम दर्शन

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दर्शन मै सन् १६३४ के पहले न कर सका। सन् १६३४ की ६ अक्तूबर को बनारसीदासजी चतुर्वेदी के साथ मारवाडी बालिका विद्यालय की कुछ लडकियो और अध्यापिकाओ को लेकर गुरुदेव के दर्शनो को गया और ७ तारीख को गुरुदेव के दर्शन हुए। गुरुदेव के प्रथम दर्शन से, बातचीत से, मेरे दिल पर जो प्रभाव पडा, वह उस दिन की डायरी से यहा दे रहा हू

शान्तिनिकेतन की अन्य चीजे देखने के बाद ३ बजे बनारसीदासजी और लडकिया तथा मैं गुरुदेव के कमरे मे ले जाये गए। जिस कमरे मे गुरुदेव बैठे थे, उसकी दीवारो पर गुरुदेव के हाथ के बनाये हुए चित्र अकित थे। फर्श से चार-पाच फुट ऊचे तक शीतलपट्टी काठ के फ्रेम मे लगी हुई थी। गुरुदेव जिस आसन पर बैठे थे, उसपर हाथ की कारीगरी का काम किया हुआ था और सामने सुन्दर फूलो का गुलदस्ता था। जितनी चीजे वहा थी, वे सब-की-सब कला की द्योतक थी। गुरुदेव रेशमी कुर्ता पहने, दूध की तरह सफेद बाल और सुन्दर चेहरा, बडी-बडी आखे, विशद ललाट और लम्बी सफेद दाढी—ऐसी उस सौम्य मूर्ति को देखकर किसी प्राचीन ऋषि का स्वाभाविक रूप से स्मरण हो आता था।

हम लोगो ने चरण छूकर गुरुदेव को प्रणाम किया। उन्होने प्रेम-भरी दृष्टि से देखते हुए कहा—"बोसुन।" उनकी दृष्टि मे आकर्षण था और स्वर मे माधुर्य। कुशल-समाचार पूछने के बाद शातिनिकेतन के बारे मे कहने लगे—"यह सस्था ही मेरा जीवन है, मेरा सबकुछ यही है। इसकी उन्नति के लिए मै जीता हूं। मैने अपना सबकुछ शातिनिकेतन को दे दिया। नोबेल पुरस्कार के रुपये शातिनिकेतन को दिये। मेरी पुस्तको से जो आय होती है, वह शातिनिकेतन की ही है। जमीदारी की आय का बहुत-सा हिस्सा भी शातिनिकेतन मे चला जाता है। आजकल जमीदारी की आय कम हो गई है। पुस्तको की आय भी कम होने लगी

है; इसीलिए शातिनिकेतन पर कर्ज हो गया है। इस सस्था के वोझ से मैं दवा जा रहा हूं। जो हो, मुझे यह वोझ लेकर चलना है। मैं मद्रास जा रहा हू। इस तिहत्तर वर्ष की उम्र मे मैं वाहर नही जाना चाहता। आज मुझमे न तो शक्ति है और न इच्छा है कि नाच-गान की पार्टी लेकर फिरू। पर क्या करू ? शातिनिकेतन के लिए धन चाहिए। देशवासी मुझे यहा वैठे-वैठे धन नही देते। वे मेरा नाच-गान और कविता सुनना चाहते हैं। मैं वही करूगा। शातिनिकेतन पर सत्तर हजार का कर्ज है। उस कर्ज को चुकाना चाहता हू। मैं शातिनिकेतन, विश्वभारती को वगाल की नही, भारतवर्ष की नही, ससार की सस्था मानता हूं और चाहता हू कि यह सस्था ससार के तमाम लोगो की सस्कृति का आदर करे और भारतीय सस्कृति का प्रतिनिधित्व करे। यहापर सभी सस्कृतियो और भाषाओ के विद्वान रहे और अपनी-अपनी सस्कृतियो का अन्वेषण और उन्नति करे। आज से कई वर्ष पूर्व यहा हिंदी की पढाई शुरू की गई थी। इसके लिए हमे मद्रास से सहायता मिला करती थी। उसके वन्द होने पर श्री शिवप्रसाद गुप्त छ सौ रुपये साल सहायता दिया करते थे। आजकल वह भी वद है। पर मैं हिन्दी की पढाई कैसे वन्द कर सकता हू ? हिन्दी के अच्छे विद्वान हजारीप्रसादजी द्विवेदी हमे मिल गये है। उनको मै कैसे छोड सकता हू ? यहा हिन्दी के लिए अच्छी से-अच्छी व्यवस्था हो, हिन्दी की स्थायी सीट हो, एक हिन्दी-भवन हो और सुन्दर पुस्तकालय हो। तुम्हारी जाति धनी है। यदि ठीक समझो और कर सकते हो, तो इस काम को करना।"

ससार मे ऊचा किया, जिसकी लिखी पुस्तको का, कविताओ का ससार के वडे-वडे विद्वान आदर करते है, जिसकी वाणी सुनने के लिए अमेरिका आदि देशो के लोग भी लालायित रहते है, वह इतनी वडी सस्था के लिए रुपये मागता भटकता फिरे, क्या यह हम लोगो के लिए लज्जा की वात नही है ? इच्छा हुई और दर्द भी हुआ कि गुरुदेव के शातिनिकेतन का आर्थिक सकट किस तरह कटे। सोचा, अपनी सामर्थ्य ही कितनी ? एक छोटी-सी भेट गुरुदेव के चरणो पर रखने की वात वनारसीदासजी से कही और उन्होने गुरुदेव से कहा। वह तो कवि थे, हृदय के भाव को जानते थे, पहचानते थे। उनके सामने वस्तु का मूल्य नही, भावना का मूल्य था। कहा, "वहुत अच्छा।" यहातक कि उसी समय से मुझ जैसे साधारण आदमी को वह कभी भूले नही। अपने परिवार का जैसा सम्वन्ध मानने लगे। जव वह धन-सग्रह के लिए निकले और उनका पहला व्याख्यान पटना मे हुआ, तव उस सभा मे मेरी उस छोटी-सी भेट का जिक्र तक किया।

वह वहुत ही भावुक थे। मेरे दिल पर भी इस वात का गहरा असर रहा कि शातिनिकेतन का ऋण कैसे चुकाया जाय। मैंने एक वडे धनी सज्जन से जिक्र किया कि इतना वडा आदमी पैसा मागने के लिए भटके, यह ठीक नही। हम लोगो को इन्हे एक अच्छी रकम देनी चाहिए। सभी जानते है, वाद मे तो पूज्य गाधीजी की प्रेरणा से शातिनिकेतन का सम्पूर्ण ऋण चुका दिया गया। गुरुदेव वहुत जल्द ही इस यात्रा से वापस आ गये। एक ही स्थान पर यात्रा पूर्ण हो गई। गुरुदेव के मन पर भी इसका वहुत अच्छा प्रभाव पडा। एक दिन वात करते हुए कहने लगे—"देशवासियो ने मुझे चाहा तो तिरासी या छियासी वर्ष तक मैं जी सकता हू।" मैंने कहा, "गुरुदेव, देशवासी तो चाहते है कि आप वरावर हमारे वीच रहे।" उन्होने कहा, "मुझे उत्साह मिलना चाहिए न ?" इसके वाद तो कई वार शातिनिकेतन जाने का, गुरुदेव के दर्शन करने का, मौका मिलता रहा।

गुरुदेव कलकत्ता आते, तव कभी-कभी कुछ लोगो को वुलाकर अपनी कविता सुनाया करते। एक छोटा-सा साहित्यिक समारोह-सा होता। एक

वार ऐसे समारोह मे शामिल होने के लिए गुरुदेव के सेक्रेटरी ने फोन किया। शाम को मैं, भाई भागीरथजी मेरी पुत्री पन्ना उसमे गये। एक हाल मे पचास-साठ स्त्री-पुरुष। धूपवत्तिया जल रही थी। पितसौत मे चिराग जल रहे थे और गुलाब आदि फूलो से गुरुदेव के बैठने के समीप का स्थान सजा हुआ था। निहायत सुन्दर, सात्विक और कलापूर्ण वातावरण था। गुरुदेव आये। लोगो ने खडे होकर उनको नमस्कार किया। बहनो ने आरती उतारी। एक पीढे पर गुरुदेव विराजे। हल्के रग की खादी का कुर्त्ता पहने वह कितने सुन्दर लगते थे! वह बूढे थे, कमर झुक गई थी, तो भी देखने मे सुन्दर मालूम होते थे और उनका रौब सम्राटो जैसा था। पाच-सात मिनट आवभगत की बाते करने के बाद गुरुदेव ने पूछा—"कहो, कौन-सी कविता सुनना चाहते हो?" उपस्थित लोगो ने उनकी पुस्तको मे से, जो ढेर-की-ढेर सामने रखी थी, कहा—"अमुक, अमुक।" पहले उन्होने थोडी देर गद्यकाव्य सुनाया, बाद मे कविताए। एक के बाद एक कविता का नाम लोग बोलते रहे और वह सुनाते रहे। इस प्रकार पौने दो घटे बिना सहारे पीढे पर बैठे वह अपनी स्वरचित कविता सुनाते रहे। एक असीम आनन्द-सागर उमड रहा था। लोग सुध-बुध खोये-से उस सागर की हिलोर का आनन्द ले रहे थे। सुननेवालो का मन ही नही भरता था और सुनानेवाले की बात तो प्रभु ही जाने। वह तो आया ही इसीलिए था। उसकी तो साधना ही साहित्य और कला थी। एक सज्जन ने कहा, "गुरुदेव, गीत सुनाइए। उन्होंने कहा, "अब गाता नही।" बहने हठ करने लगी, "गुरुदेव, जरूर सुनाइए। आप तो बहुत अच्छा गाते हैं न?" वह बोले, "किसी समय अच्छा गाता था, अब नही।" फिर भी उन्होने गीत सुनाया। उनके मुह से गीत का आज क्या बखान किया जाय! वह तो ऋषि की वाणी थी, सरस्वती की वीणा थी।

उपदेशपूर्ण कविता उनके निज के अक्षरो मे लिखी आई। मैंने गुरुदेव के अक्षर उसी दिन देखे। जैसे गुरुदेव सुन्दर थे, वैसे ही उनके अक्षर भी। वास्तव मे वह सौदर्य के पुजारी थे। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के उपासक थे।

एक दिन गुरुदेव के सेक्रेटरी का फोन आया कि गुरुदेव बुला रहे है। फुरसत हो, तब आ जाना। थोडी देर मे हम लोग उनके पास पहुचे। वह बोले, "तुमको इसलिए बुलाया था कि यह जो मकान है, वह मैंने विश्वभारती को दे दिया है। इसको भाडे दे देना चाहिए। ठाकुर-कुटुम्ब के मकान भाडे मे नही दिये गए है। मेरे चले जाने के बाद शायद यह मकान भी भाडे मे नही दिया जा सकेगा। इसलिए मै चाहता हू कि मेरे सामने ही मकान भाडे दे दिया जाय, जिससे विश्वभारती को कुछ आय होने लगे। मेरे पास अब कोई सम्पत्ति या चीज नही रह गई, जो विश्व-भारती की न हो। इससे मुझे सन्तोप है।"

वह स्वय विश्वभारती थे। वह विश्वप्रेमी थे। देश, जाति और साम्प्रदायिक भावो से ऊपर थे। बोले, "इस बगल के मकान मे मैं जन्मा हू। इसीमे खेला हू और यही पर मैं मनुष्य बना (एइ बाडी ते आमि मानुष हये ची।) इसी मकान की छत की दीवारो पर व छत पर मैंने खडिया से, कोयले से, पहले-पहल कविता लिखी।" उनके मन मे इस बात का दु ख-सा ही था कि उनका बाहर के लोगो ने तो बहुत आदर किया, पर अपने देश के लोगो ने वैसा नही किया। वह विश्वभारती को अमर कर जाना चाहते थे। विश्वभारती की जिम्मेदारी किन्ही मजबूत हाथो मे देकर जाना चाहते थे। अपनी सबसे प्रिय चीज विश्वभारती के लिए उनके मन मे आशका थी कि उनके बाद विश्वभारती चल सकेगी या नही। अब तो उसकी सारी जिम्मेदारी देश के लोगो पर ही है। गुरुदेव तो ऊपर रहेगे ही, पर हमारा कर्त्तव्य है कि जिस चीज को उन्होने खून से सीचा, उसे हम मृत न होने दे।

गुरुदेव की बीमारी बढती जा रही थी। शातिनिकेतन से जो खबरे आती थी, वे भय पैदा करती। इसलिए इच्छा थी कि एक बार गुरुदेव की उपस्थिति मे फिर शातिनिकेतन हो आवे। इतने मे मारवाडी बालिका विद्यालय की लडकियो ने कहा, "मत्रीजी, शातिनिकेतन दिखा लाइए।"

मैं लडकियो को लेकर भाई भागीरथजी के साथ १७ जुलाई को शाति-निकेतन गया। गुरुदेव बिस्तर पर लेटे हुए थे। उनके सेक्रेटरी ने उनके कान के पास जरा तेज आवाज मे हम लोगो का नाम बताया, तो उन्होंने आखें खोली, देखकर बोले, "भालो आछो।" गुरुदेव को करीब दो वर्ष के बाद देखा था। वह बहुत कमजोर दीखते थे। ऐसा लगता कि वह अब बहुत दिनो के मेहमान नही हैं। बहुत थक गये थे। सुनाई भी कम पडता था और होश भी कम रहने लगा था। शाम की गाडी से शातिनिकेतन से रवाना होते समय मन मे नाना तरह के भाव उमड रहे थे। क्या गुरुदेव नही रहेगे ? उनके बाद क्या यही भावना, यही दृश्य, विद्वानों का और कलाप्रिय लोगो का यही जमघट रहेगा ? उनके बाद भी क्या दूर-दूर देशो के लोग शातिनिकेतन देखने आयेगे ? ईश्वर गुरुदेव की कृति शाति-निकेतन को चिरायु रखे, यही इच्छा मन मे थी।

गुरुदेव को कलकत्ता लाया गया और उनका आपरेशन हुआ। दो-चार रोज तो हालत ठीक रही, पर बाद मे बिगडने लगी। ७ अगस्त को ९ बजे गुरुदेव के सेक्रेटरी का फोन आया कि गुरुदेव ज्यादा बीमार हैं। अब वह घटे-दो-घटे के ही हैं। मैं तथा भाई भागीरथजी तुरत गुरुदेव के निवास-स्थान पर गये। मकान के आसपास हजारो आदमियो की भीड थी। हम भीतर गये। कलकत्ता के मुख्य-मुख्य सभी व्यक्ति उपस्थित थे। गुरुदेव की सेवा-सुश्रूषा करनेवाले भाई-बहनो की आखो से अश्रुधारा बह रही थी। गुरुदेव को आक्सीजन दिया जा रहा था। मैंने हृदय को थामकर ससार के उस महान पुरुष को अन्तिम प्रणाम किया। उनके प्रस्थान का दुख असह्य था। हृदय भरा आ रहा था। पर उस विश्व-विभूति के अन्त समय मे दर्शन हो गये, इस बात का सतोष था।

ऐतिहासिक पुरुष

वर्ष-भर लगातार मनाया जा रहा है। यह सब करके हम अपने-आपको संतोष कराते है, गुरुदेव के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते है, साथ ही, उनके साहित्य, संगीत, कला आदि के प्रचार का यह अच्छा-सा मौका भी मिल रहा है।

गुरुदेव की प्रतिभा इतनी व्यापक, विशाल और बहुमुखी थी कि उसको पूरा-पूरा समझना, आकना, मुश्किल ही नही, लगभग असभव-सा है। उन्होने कविता को नये छद दिये, संगीत को नये स्वर, चित्रो को नई आकृतिया और मानव को अनेक प्रेरणाए दी। वह साधक, चिंतक और महान प्रेरक थे। एक बार स्वर्गीय रामानन्द चटर्जी महोदय ने एक प्रवचन मे कहा था, "शातिनिकेतन के प्रारम्भ के दिनो मे मैं वहा बहुत समय तक रहा हू। मेरा और गुरुदेव का सोने का कमरा आमने-सामने था। मैने एक दिन भी ऐसा नही देखा कि वह मुझसे पहले सोकर न उठ गये हो। मैं प्रात शीघ्र उठनेवाला रहा हू, पर शातिनिकेतन मे मैंने देखा कि मैं जब उठता हू तब गुरुदेव या तो बीच के दालान मे प्रार्थना कर रहे, लिख रहे या घूम रहे होते है।

चित्राकन उन्होने बहुत समय बाद शुरू किया। मैं समझता हू कि सत्तर वर्ष की उम्र के आसपास चित्रकला की ओर उनका अधिक ध्यान गया। उन्नासी वर्ष मे उनका तिरोधान हुआ। इतने कम समय मे उनके चित्रो की सख्या सोलहसौ अस्सी के करीब हो गई। वह विश्वभारती मे सुरक्षित है। ब्रिटिश म्यूजियम ने कई लाख रुपये देकर इन्हे लेना चाहा था। इसके अलावा कितने चित्र कितने लोगो को उन्होने दे दिये, उनकी सख्या भी कम नही है। एक उदाहरण दू उनकी मानसिक स्थिति का, जब उन्होने चित्राकन मे ही अपने-आपको लगा रखा था। वह विश्वभारती के लिए कलकत्ता आये और लगातार सात दिन तक अपने नृत्य-नाट्यो का प्रदर्शन किया। गुरुदेव स्वय इन नृत्य-नाट्यो के समय मच पर बैठते तथा सब स्वर,तालो और मुद्राओं का निरीक्षण करते। यह उत्सव समाप्त होने पर वह शातिनिकेतन चले गये। पर उनका शरीर इस परिश्रम को बर्दाश्त न कर सका और वह बहुत बीमार हो गये। कलकत्ता के उस समय के सबसे बड़े चिकित्सक स्वर्गीय डा० नीलरतन सरकार, जो गुरुदेव के

प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे, शातिनिकेतन चले गये और जबतक गुरुदेव स्वस्थ न हुए, वही रहे। गुरुदेव अचेत अवस्था मे बहुत ही अधिक बीमार थे और सारे देश मे, खासकर बगाल मे, उनकी अस्वस्थता की बडी चिन्ता थी। तीन-चार दिन बाद गुरुदेव की चेतना लौटी और वह बोलने लगे, तो उस अवस्था मे एक बडा विनोद हुआ। इस स्थिति मे ऐसा विनोद शायद वह ही कर सकते थे। उन्होने होश मे आते ही जब अपने मुह पर हाथ रखा, तब उनकी बडी-बडी दाढी, जिसके लम्बे-लम्बे बाल रेशम से भी नरम थे, गायब थी। उन्होने बगला मे कहा, "आमार दाढी कोथाए गैलो।" डाक्टर सरकार ने बहुत ही नम्र होकर हाथ जोडे और क्षमा मागते हुए कहा, "गुरुदेव आमार हाते ई एई अपराध होय छे।" उन्होने तुरन्त उत्तर दिया, "बूझे ची। जम आमाके घोरे छिलो, आमाके घोरे निए जेते लागलो, तुमी आमा के ऐदिके टेने निले। भालोई कोरेचे।" सब लोग हँसने लगे और डाक्टर सरकार तो धन्य हो गये। फिर डाक्टर सरकार ने विनयपूर्वक पूछा, "क्या लेगे, खाने के लिए? आपकी किसी चीज पर इच्छा है?" उन्होने कहा, "आगे आमाके तूलिका और रग दाओ। फिर तो चित्राकन के सब उपकरण उपस्थित किये गए और सबसे पहले उन्होने एक चित्र आका। जरा सोचिए, इतनी बडी और लम्बी अचेतन अवस्था के बाद चेतना का उदय होते ही सबसे पहले चित्र आकना क्या प्रकट करता है।

राजस्थानी साहित्य को, जो हिन्दी का ही एक अग है, सुनकर वह मुग्ध हो गये। उन्होने कहा, "आज के दस वर्ष पहले मै इसको सुनता तो इसका वगला मे अनुवाद करता।" वह थी उनकी विश्वबधुत्व की भावना और सब भाषाओ के प्रति उनका प्रेम और आदर।

४ : लेडी अबला बोस

सन् १९२७ मे जब मै मारवाडी वालिका विद्यालय का मत्री चुना गया, तो स्वभावतया मेरी इच्छा कलकत्ता के अच्छे-अच्छे सभी वालिका विद्यालय देखने की हुई। इसी सिलसिले मे स्थानीय ब्राह्म वालिका विद्यालय भी देखने गया। इस सस्था की प्रधानाध्यापिका एक अपटू-डेट महिला थी, जिन्होने इग्लैड मे किण्डरगार्टेन तथा शिक्षा-सवधी अन्य ट्रेनिग पाई थी। उन्हीके पास मैंने एक दुवली-पतली सावली, नाटी-सी वृद्धा को भी देखा, जो वहुत सादी पोशाक मे थी और वडे उत्साह, तत्परता, सौजन्य एव अपनत्व के साथ सारी चीजे दिखा और समझा रही थी। मैंने पास खडे एक व्यक्ति से जब उनका परिचय पूछा, तो मुझे वताया गया कि यही लेडी अवला वोस है। मुझे उनकी वात और अपनी आखो पर जैसे विश्वास नही हुआ। सर जगदीशचन्द्र वसु जैसे विश्वविख्यात विज्ञान-वेत्ता की पत्नी और इतनी सरल, निराडम्वर, निरभिमानी और इतनी घुल-मिलकर वातें करनेवाली! यही था मेरा लेडी वोस से प्रथम साक्षात्कार।

इसके वाद स्वभावतया लेडी वोस के वारे मे अधिक जानने, उनके अधिक सम्पर्क मे आने की मेरी उत्सुकता हुई। कुछ दिनो वाद वगाल के गवर्नर द्वारा उनकी प्रिय सस्था नारी शिक्षा समिति के उद्घाटन का अवसर आया। लेडी वोस का निमत्रण पाकर मै भी उस अनुष्ठान मे शरीक हुआ—वैसे गवर्नरो के आयोजनो मे जाने की उन दिनो इच्छा

या प्रेरणा ही नही होती थी। लेकिन इस अवसर पर मातृ जाति के दु:ख-दर्दों के प्रति लेडी वोस मे जो गहरी सहानुभूति और उसकी शिक्षा, सुख और हित के प्रति उनका जो अनुराग और लगन देखी, उसका मुझपर वहुत अनुकूल प्रभाव पडा। इस सस्था के द्वारा, जिसमे सामान्य ग्रामीण वहनो से लेकर अच्छी सभ्य शिक्षिता वहनो की सेवा, सहायता, शिक्षा होती है, उन्होने केवल स्त्री-जाति की सेवा और सहायता ही नही की, उनमे अपने पावो पर खडा होने का आत्मविश्वास और आत्मवल भी भरा है। इसके अलावा सस्था की महिलाओ द्वारा तैयार की हुई चीजो मे से रुपये-आठ आने तक की चीजो को मैने स्वय लेडी वोस को कार्नवालिस स्ट्रीट मे तथा दूसरी जगहो पर खडे होकर नि:सकोच विक्री करते देखा है।

एक वार जमनालालजी वजाज कलकत्ता आये हुए थे। लेडी वोस की चर्चा चली तो वोले कि मेरा तो उनसे और डा० वोस से वडा गहरा सम्वन्ध रहा है। उनसे जरूर मिलेंगे। उस दिन हम लोग सौभाग्य से वोस-दम्पति के अलावा आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय और श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय महोदय से मिले। वोस-दम्पति की वैठक की सादगी और उनकी मिलनसारी, सरल स्वभाव आदि कभी भुलाये नही भूलेंगे। जिस प्रेम, अपनत्व और विनम्रता के साथ वोस-दम्पति हम लोगो से मिले, वह दृश्य मानो आज भी आखो के सामने ज्यो-का-त्यो है। इसके वाद जव-जव लेडी वोस से मिलने का मौका मिला, मैंने अनुभव किया कि वह ऊचे और सवेदनशील मानस की मानवी थी और किसीके दु:ख-दर्द की उपेक्षा वर्दाश्त ही नही कर सकती थी।

एक वार उन्होंने मुझे और भागीरथजी को अपनी प्रिय सस्था के सम्वन्ध मे वातचीत करने को वुलाया था। उस वार भी हम उनकी सादगी और कलापूर्ण ढग से सजी वैठक मे ही वैठे, पर उस दिन विज्ञानाचार्य सर जगदीश के अभाव मे जैसे वह विना प्राण के देह जैसी लग रही थी। सामने दीवार पर वही अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का भारतमाता का चित्र टगा था, जो उस दिन हम लोगो ने देखा था। पर उस दिन की भारतमाता मे हमे जो वल और मुक्ति की प्रेरणा तथा छटपटाहट नजर आई थी, आज स्वाधीन भारतमाता के चेहरे पर स्वतन्त्रता की [illegible]

प्राणमय आभा का अभाव-सा लगा। जब लेडी बोस आयी तब उन्हे देखकर भी लगा, मानो सर जगदीश के वियोग ने उन्हे झकझोर डाला है। पर बातचीत मे मैंने पाया कि नारी-जाति के दु ख-कष्ट दूर करने की वही चिन्ता, वही तत्परता, वही आकुलता और हार्दिकता ८७ वर्ष की उम्र मे भी उनमे है, जो कि ५०-६० वर्ष पहले थी। उनकी बातो का साराश यही था कि उपेक्षित, उत्पीडित और अशिक्षित नारी-जाति की उन्नति और स्वावलम्बन का जो कार्य उन्होने आरम्भ किया, वह कायम और फलता-फूलता रहे। उनका शरीर अवश्य जर्जर हो गया था, पर उनका मस्तिष्क पूर्णरूप से सजग और स्वस्थ था। वह सारी बाते स्पष्ट रूप से सोचती और सबसे नियमानुसार काम लेती थी। उनका यह कार्य एक अखण्ड दीप की तरह आज भी जारी है और उसे जारी रखना तथा आगे बढाना हम सबका पुनीत कर्तव्य है।

५ : बालमुकुन्द गुप्त

जिस समय श्री बालमुकुन्द गुप्त का जन्म हुआ था और उनका लालन-पालन, शिक्षण और सस्कार हुए थे वह युग भारत का विशेष युग था। उस युग ने हमे हर दिशा मे अनेक विशेष पुरुष दिये।

इन बडे लोगो की अपने-अपने क्षेत्रो मे विशेष देन है। इन लोगो ने जिस क्षेत्र मे भी काम किया उसी क्षेत्र मे भारत के गौरव को इतना बढा दिया कि इतना लम्बा समय गुजर जाने पर भी इन महापुरुषो की याद बनी हुई है और देश कृतज्ञता के साथ उनकी याद करता है।

जब गुप्तजी कलकत्ता से 'भारतमित्र' का सम्पादन करते थे, वह समय हिन्दी के लिए प्रयत्न करने का समय था। उन दिनो कलकत्ता हिन्दी का विशेष केन्द्र बन गया था। हिन्दी के अनेक साधक, चिन्तक और साहित्यकार उन दिनो कलकत्ता मे थे और बाहर के लोग कलकत्ते

की ओर देखा करते थे। आज कलकत्ता उस समय से कम-से-कम आठ-दस गुना बड़ा है और यहां हिन्दीभाषी लोगो की संख्या भी हिन्दुस्तान के किसी एक नगर के हिन्दीभाषियो की संख्या से बहुत अधिक है। इसके अलावा यहा साधन तथा सुविधाए भी दूसरी जगहो से बहुत अधिक है। उन दिनो का आज किसी बात से मुकाबला नहीं किया जा सकता। तब 'भारतमित्र' को लोगों के घर जाकर पढकर सुनाना पडता था, बिना पैसे के। पाठको का ऐसा अभाव साधको के लिए चुनौती थी और वे हिन्दी के अनन्य सेवक, साधक और चिंतक तथा साहित्यकार इस तप मे तप रहे थे कि किस प्रकार हिन्दी उन्नत हो, फले-फूले, फैले-पनपे। गुप्तजी ने उस समय जो तप किया या जिस प्रकार हिन्दी को संवारा, सिंगारा, सजाया और हिन्दी-पत्रकारिता की जो सेवा की, गहन विषयो को अपनी प्रवाहमय भाषा द्वारा सरल, सहज बनाकर उपस्थित किया, वह सदा स्मरणीय है। गुप्तजी की हिन्दी-सेवा या हिन्दी-पत्रकारिता हिन्दी-जगत मे सदा आदरणीय रहेगी। आज एक सौ वर्ष बाद ही नहीं, जब कभी हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास पर विचार होगा तब गुप्तजी को आदर और श्रद्धा के साथ स्मरण करना पड़ेगा। गुप्तजी और उनके साथी उस समय जो कार्य करते थे, उनसे कलकत्ता हिन्दी-जगत मे सम्मान तथा महत्व का स्थान रखता था। आज आदमी तो बहुत है, साधन भी प्रचुर है, पर कोई तपस्वी नहीं दीखता जो हिन्दी की सेवा करना अपना जीवनोद्देश्य बनाये। मैं मानता हूं कि जिस स्वाधीन देश की अपनी भाषा न हो—ऐसी भाषा, जिसे गौरव के साथ अपनी राष्ट्रभाषा कह न सके, वह देश स्वाधीन देशों की श्रेणी मे नहीं गिना जा सकता। उसकी स्वाधीनता अधूरी है, उसका विकास असम्भव है।

देश ज्ञान के क्षेत्र मे कभी विकसित नही हो सकता, देश के विकास के लिए तो उसकी अपनी भाषा होगी तभी वह विकासमान होगा। आज गुप्तजी की शतवार्षिकी पर हर आदमी का, जो गुप्तजी के प्रति श्रद्धा निवेदन करना चाहता है, प्रयत्न होना चाहिए कि जिस भापा को उन्नत करने के लिए गुप्तजी ने अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ समय, शक्ति और श्रम दिया, उसका ऋण हमारे ऊपर है और उनको तथा ऐसे महापुरुपो की स्वर्गीय आत्मा को श्रद्धा प्रदान करने के लिए हम प्रण करे कि जिस भापा की उपासना करने मे उन महान आत्माओ ने अपने-आपको न्यौछावर किया है, हम उसको देश की उन्नतशील और गौरवशील राष्ट्रभापा बनायेगे। यही सच्ची श्रद्धाजलि होगी गुप्तजी के प्रति। मै ईश्वर से प्रार्थना करता हू कि वह हमे सही मार्ग पर चलने का, भारत को विकासमान देश बनाने का, बल दे, जिससे भारत गौरव के साथ हिन्दी को अपनी राष्ट्रभाषा कहने मे समर्थ हो। ऐसी हमारी हिन्दी है, हिन्दी हो सकती है, हिन्दी ही होगी। हमारा मानस इसे स्वीकार करे और हिन्दी विकसित हो, इसमे भारत का विकास निहित है।

६ : मैथिलीशरण गुप्त

कला निर्धूम यज्ञाग्नि की तरह उस सपूर्ण समिधा को ग्रहण कर लेती है, जो यज्ञ-काल मे सहधर्मियो के हाथो होमी जाती है। कलाकार की कला या कृति का यज्ञकाल तो उतने दीर्घ समय तक चलता रहता है जबतक वह कला या कृति जन-मन-रजक रूप मे जीवित रहती है। कलाकार की कृति ही एक ऐसा चिरकालिक यज्ञ है, जिसमे कलाकार की आत्मा का निवेदन ही नही, उसके पाठको की प्रशसा-श्रद्धा भी उस यज्ञाग्नि मे घृताहुति का कार्य निरतर करती रहती है। यही कारण है कि कलाकार का वास्तविक परिचय उसकी ऐसी कृतियो के द्वारा होता है

जो दीखने मे रत्नाचल की तरह है, लेकिन जिसका महान उद्देश्य तो दान की महत कामना है। कलाकार का प्रत्यक्ष दर्शन या उसके ससर्ग मे आने का सौभाग्य बहुत कम लोगो को मिल पाता है, पर उसकी कृतिया तो चाहनेवालो को इस तरह प्राप्त हो सकती हैं, मानो तीर्थ-यात्री को अपरिचित तीर्थों की पगडडी अपने-आप बढाये ले चले। यही कारण है कि सच्चे कलाकार की कृतिया प्रभाव किये विना नही रहती।

सन् १९०९-१०की बात होगी। 'सरस्वती' मे मैंने गुप्तजी की कविता पढी। उस समय मेरी उम्र बहुत कम थी। गुप्तजी कौन है, इससे मेरा कोई सम्बन्ध नही था। मैंने कविता पढी, तो जिनके पास से मैंने 'सरस्वती' ली थी, उनके पास जाकर अपनी जिज्ञासा का केवल यही समाधान पाया कि वह महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के शिष्य है और द्विवेदीजी ही 'सरस्वती' के सम्पादक है। मेरे मन मे भी चाह उत्पन्न हुई कि मैं भी 'सरस्वती' का ग्राहक बनू। उसका वार्षिक मूल्य चार रुपये था, जो उस समय मेरे लिए खर्च करना कठिन था। उन दिनो मैं अपने गाव नवलगढ मे था। जो हो, किसी तरह मैंने चार रुपये खर्च किये और 'सरस्वती' का ग्राहक बना। इस तरह गुप्तजी की कविताए पढने लगा। इसके कुछ ही दिनो बाद 'भारत-भारती' निकली। उस समय तक कलकत्ता चला आया था और २५-३० रुपये की नौकरी करने लगा था। मेरे एक दूसरे मित्र बसतलालजी मुरारका ने 'भारत-भारती' की कुछ पक्तिया लिखकर भेजी और इस कृति को पढने का आग्रह किया। अबतक गुप्तजी के प्रति आकर्षण प्रबल हो ही चला था, उनकी यह कृति भी खरीदी और सपूर्ण पढ गया। बार-बार पढता रहा और उसकी अनेक पक्तिया कठस्थ कर ली। इस प्रकार गुप्तजी के साहित्य के प्रति मेरा अनुराग व श्रद्धा बढती गई।

जब 'यशोधरा' आई और उसको पढा तो ऐसा लगा कि यह तो अपूर्व चीज है। 'यशोधरा' के कथानक का गुप्तजी ने जिस मार्मिकता से वर्णन किया है वह बहुत ही अनूठा और अनुपम है। 'यशोधरा' पढे हुए मुझे आज अनेक वर्ष हो गये है, पर उसकी एक पक्ति मेरे कानो मे गूजती है और यह कहूं तो अत्युक्ति न होगी कि मौके-मौके पर यह पक्ति

मुझे सहारा और बल देती है—"रुदन का हँसना ही तो गान।" यह बात कितनी गहरी है !

शायद सन् १९३५ मे मैंने गुप्तजी के प्रथम दर्शन किये। वह कलकत्ता आये थे। एक साहित्यिक गोष्ठी मे पहुचे थे। जिस वेशभूषा मे गुप्तजी को देखा, वह मेरी कल्पना का न था—बुन्देलखडी पगडी, अगरखा और दाढी, जिसके बालो का कुछ हिस्सा पक गया था। मैंने उन्हे प्रणाम किया। उन्होने मेरी आशा से बहुत ही अधिक स्नेहभाव से नमस्कार के रूप मे उसका उत्तर दिया। पर परिचय और बाते न हो सकी। लोगो ने गुप्तजी से कविता सुनाने का आग्रह किया। मेरे मन मे गुप्तजी की कविता सुनने की इच्छा थी। मुझे याद नही है, उस समय उन्होने कुछ कहा तो सही, पर कविता नही सुनाई। उस कहने मे बहुत ही नम्रता थी। उन्होने अपनी अकिंचनता बतलाई थी।

इसके बाद 'साकेत' प्रकाशित हुआ। बाहरी जीवन मे अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण उसे मैं १९४२ की जेलयात्रा मे ही पूरा पढ सका। उससे एक वर्ष पहले गुप्तजी भी जेलयात्रा कर चुके थे और उनके प्रति जो साहित्यिक श्रद्धा थी वह देशभक्ति का पुट पाकर द्विगुणित हो चुकी थी। मैं 'रामचरितमानस' का नित्य का पाठक हू। यह कहने की घृष्टता तो नही कर सकता कि 'साकेत' रामचरितमानस से बढिया है, पर कई स्थलो पर तो वह निश्चय ही बहुत उत्तम है।

बहन महादेवी कहा करती है कि गुप्तजी हमारे पितामह है। प्रयाग की साहित्यकार ससद मे सरस्वती मन्दिर का शिलान्यास करने राष्ट्रपति आये थे, उस अवसर पर दो-तीन दिन गुप्तजी के साथ रहने का सुअवसर मिला। वहा राय कृष्णदासजी और वृन्दावनलाल वर्मा भी थे। उस उम्र मे भी इन तीनो मित्रो को जिस तरह का विनोद करते देखा, वह आज के शिष्टाचार और सभ्यता के अभिशाप से पीडित लोगो मे नही मिल सकता। उनके विनोद मे गहरी आत्मीयता और नि संकोच सरलता के दर्शन होते है, वे बडे प्रिय लगते है और ऐसा लगता है जैसे अनपढ ग्रामीण अपने खेतो और खलिहानो मे काम करते, बाते करते, विनोद मे झगड रहे हो। वही एक दिन वृन्दावनलालजी

वाहर से कुछ देर करके आये। गुप्तजी वडी देर से प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हे देखते ही गुप्तजी ने रायसाहव से कहा कि तुम्हारी वह लाठी कहा हे ? उन्होने पूछा—क्या करोगे ? बोले कि इस वृन्दा का सर फोडूगा, यह इतनी देर करके क्यो आया ! इसपर वर्माजी ने भी वहुत ही विनोदभरा उत्तर दिया और उपस्थित मित्रो मे एक अट्टहास गूज गया।

जो छद रचता है, वह कवि कहलाता ही है। जिसका हृदय कवि है, वह छद-रचना न करने पर भी कवि कहलाता है। कवि-हृदय का मतलव हे सहृदयता, सहानभूति, उदारता, स्नेहशीलता, सवेदना। जिसके अन्दर जितनी गहरी सवेदना है, वह उतना ही वडा कवि है। दूसरे का दु ख देख-सुनकर हृदय मे वेदना का सचार होता हे, तो कवि की कविताए अपने-आप फूट पडती है और छद वनते हे। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के वटवारे की चर्चा चल रही थी। वटवारा होकर रहेगा, ऐसी स्थिति वन चुकी थी। काग्रेस के वडे लोगो ने पूज्य गाधीजी की इच्छा-अनिच्छा का विचार किये विना उसे स्वीकार कर लिया था। मातृभूमि के अगभग की गुप्तजी के हृदय मे कितनी वेदना थी, वह उनकी उस कविता से व्यक्त होती हे, जो उन्होने उन्ही दिनो लिखी थी। उसकी पक्तिया है .

कहो तुम्हारी मृातभूमि का है कितना विस्तार
अवनी को तुम काटो-छाटो, तो क्या व्योम को भी बांटोगे ?

आज के इस वैज्ञानिक युग मे कवि का यह प्रश्न हल हो गया है। अवनी तो वटती ही थी, व्योम भी वट गया। हमारे व्योम मे किसीके हवाई जहाज हमारी आज्ञा के विना नही घुम सकते। वह आगे कहते हैं

एक देश के विविध अंग हम, दुःखे-सुखे एक संग हम,
लगे एक के क्षत पर सबके स्नेहलेप सौ वार ॥

वह एक के क्षत पर सवके स्नेह का लेप करना चाहते हैं, सवकी वेदना, सवका दु ख मेरा वन जाय और मै अपना सुख सवको दू।

लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु।

एक दिन गुप्तजी ने वातें करते हुए कहा कि हमारे पिताजी ने राम-

चरित मानस का एक सहस्र पाठ करने का विचार किया और करने लगे। उनके स्वर्गवास के समय तक यह सकल्प पूरा नही हुआ था। हम सब भाइयो ने मिलकर बाकी के पाठो को पूरा किया। पिताजी की राम-भक्ति ने हमे वरदान दिया है, उससे ही हम फूलते-फलते रहे है। हमारे परिवार की तेरह कन्याओ का विवाह हुआ, इतनी बडी गृहस्थी बडे आनन्द से चलती है, हिन्दी-जगत का आदर और प्यार प्राप्त है, यह सब हिन्दी माता की सेवा, पिताजी की राम-भक्ति और लोगो की शुभ-कामना का ही कारण है। हिन्दी ने हमे सबकुछ दिया है। हम उसके ऋण से उऋण नही हो सकते। गुप्तजी के इन शब्दो मे राष्ट्र की सवेदना का जागरूक प्रहरी ही बोलता है।

१ : बसंतलाल मुरारका

उस समय मैं १७ वर्ष का था और वसंतलालजी भी प्राय. इतनी ही उम्र के थे। हम लोग राजस्थान के अपने गाव नवलगढ मे पहले-पहल मिले। वसतलालजी के एक दूर के भाई मेरे मित्र थे। २० वर्ष की उम्र मे ही उनकी मृत्यु हो गई। उनमे देश और समाज की उन्नति की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। हिन्दी की उन्नति के लिए वह बहुत ही प्रयत्नशील थे। एक प्रकार से सार्वजनिक कार्य के लिए उन्होने ही मुझे दीक्षित किया। मेरी धार्मिक भावनाओ को उन्होने जगाया और देश तथा समाज की सेवा करने की अभिरुचि पैदा की। हम दोनो मित्रो के प्रयत्न से नवलगढ मे सन् १९०८ मे 'नवलगढ विद्या विवर्धन पुस्तकालय' की स्थापना हुई। उस समय की स्थिति को याद करता हू और युग के आज के परिवर्तित रूप को देखता हू तो ऐसा लगता है कि वह सब जैसे स्वप्न था। वास्तव मे रात और दिन मे जितना अन्तर है उतना ही अन्तर उस समय की स्थिति और आज की स्थिति मे है।

एक दिन उसी मित्र, भाई मोहनलालजी मुरारका ने, एक समवयस्क युवक को मेरे सामने लाकर खड़ा किया और कहा, "यह मेरे भाई है वसतलाल मुरारका। मुकुन्दगढ के है। इनकी इच्छा भी अपने गाव मे पुस्तकालय खोलने की है।" इस घटना के दो-चार महीने बाद ही भाई भागीरथजी और वसतलालजी ने मुकुन्दगढ मे पुस्तकालय स्थापित कर लिया। यही वसतलालजी के साथ मेरा पहला परिचय था।

सन् १९११ मे मैं कलकत्ता आया। यहा पहुचने के कुछ दिन बाद भाई मोहनलालजी के यहा वसन्तलालजी से मुलाकात हुई। उन दिनो कलकत्ता मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हो रहा था। इस अधिवेशन के सभापति थे वदरीनारायण प्रेमघन। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सभापति होने की बात थी, पर कई कारणो से वह सभापति नही हो पाये। मुझे उस समय की स्थिति का ज्ञान नही था, पर भाई वसतलालजी ने, जिन्होने सम्मेलन मे भाग लिया था, मुझे बताया कि द्विवेदीजी सभापति न चुने जाने के कारण असन्तुष्ट हो गये। हम लोगो की उम्र उस समय बहुत कम थी और हम वहुत-सी बातो को सोच-समझ नही सकते थे। आज की तरह विकास के साधन भी उस समय उपलब्ध नही थे, पर वसतलालजी ने उसी समय से सार्वजनिक क्षेत्र मे काम करना शुरू कर दिया था।

भाई वसतलालजी विडला-वन्धुओ के यहा वलदेवदास जुगलकिशोर फर्म मे तीस रुपये महीने पर काम करने लगे और मैं सूरजमल शिवप्रसाद के यहा पच्चीस रुपये महीने पर। दोनो को काम इतना अधिक रहता था कि वहुत इच्छा रहने पर भी हम लोग आपस मे नही मिल पाते थे। उन दिनो टेलीफोन की सहूलियत भी नही थी। हम पत्रो के जरिये ही आपस मे मिला करते।

जब मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' प्रकाशित हुई, तो वसत-लालजी ने पत्र द्वारा मुझे ये पक्तिया लिखकर भेजी

हम कौन थे क्या हो गये और क्या होगे अभी,
आओ, विचारे आज मिलकर यह समस्याए सभी।

उन दिनो गद्दियो मे रात मे काम करना पडता था। वसतलालजी को दस वजे छुट्टी मिल जाती, पर रोकड का काम होने के कारण मुझे अधिक समय तक काम करना पडता था। जिस दिन मुझे जल्दी छुट्टी मिलने की सभावना मालूम होती, उस दिन हम लोग मिलने की व्यवस्था करते और वड-तल्ला की मोड पर कोठी के पास वैठकर घटो बाते करते। हमारी चर्चा का विषय होती थी देश और समाज की समस्याए। इन कामो को कैसे करे, हम इस सम्वन्ध मे सोचते-विचारते थे। कभी-कभी देश के गण्य-

मान्य नेताओं के सम्बन्ध मे भी चर्चा कर लेते थे, जिनमे लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्रपाल, गोखले, लाला लाजपतराय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गाधीजी और बगाल के क्रातिकारियो की बाते होती थी। हमारे साथियो मे ऐसे युवक भी थे जो जेल की सरकारी दमन की स्थिति के लिए अपने को तैयार करने के लिए जमीन पर सोते थे, ईंट का तकिया लगाते थे और खिचड़ी खाते थे। उन दिनो भावनाए इतनी तीव्र थी कि हर आदमी, जो जरा भी देश और समाज की सेवा के बारे मे सोचता था, हर तरह से अपने-आपको कष्टो मे डालना चाहता था। कुछ को छोडकर ऐसी विचार-धारा रखनेवालो की आर्थिक अवस्था शोचनीय थी। फिर भी अपनी आमदनी का एक हिस्सा वे सार्वजनिक कार्यो मे देने के लिए बाध्य थे। सयोग ने इसी समय एक स्वामीजी आये, जिन्होने नवयुवको को सादगी, सेवा, सत्यनिष्ठा और देश-प्रेम का पाठ पढाया। उन्होंने सात जीवनोपयोगी व्रत दिलाये (१) सूर्योदय से पहले उठना, (२) उपासना करना, (३) व्यायाम करना, (४) स्वाध्याय करना, (५) स्वदेशी वस्त्र पहनना, (६) स्त्री-सम्बन्धी चारित्रिक पवित्रता बरतना और (७) आमदनी का कम-से-कम १० प्रतिशत हिस्सा देश के कार्यो मे देना। इनके अलावा उन्होने राजनैतिक तथा सामाजिक चेतना भी जागृत की और सार्वजनिक कार्य करने के तरीके भी बताये।

पीढी और पुरानी पीढी मे समाज-सुधार कार्यो को लेकर परस्पर सघर्ष भी होता था। कई वार सघर्ष काफी गहरा और उग्र हो उठता था, जैसे आर्य समाज और सनातन धर्म मे सघर्ष हुआ। वास्तव मे यह नये और पुराने विचारो का ही सघर्ष था।

उन दिनो 'देश की वात' नामक एक पुस्तक की चर्चा हम लोगो मे खूब थी। इस पुस्तक ने अग्रेजी राज्य के विरोध मे वहुत अच्छा वातावरण पैदा किया था। इस पुस्तक को पढकर हर भारतीय अग्रेजो का कट्टर विरोधी बन जाता था। पुस्तक जब्त थी। ऐसी स्थिति मे उसका किसीके पास मिल जाना खतरे से खाली नही था। सरकारी दमन का डर वहुत था। ऐसी वात नही थी कि हम डरते नही थे, हम डरते थे, किन्तु इस प्रकार की पुस्तक पढने, नेताओ के वारे मे जानने की जिज्ञासा रखते थे और समय आने पर कुछ करने-धरने का साहस भी।

सन् १९१४ मे प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ। इसकी प्रतिक्रिया चारो तरफ दिखाई दी। सरकार भारत-रक्षा कानून वनाकर आतकवादियो को गिरफ्तार करने लगी। अग्रेजी राज्य के पिट्ठू लोग युद्ध मे सहायता करने के लिए आदोलन और प्रचार करने लगे। मारवाडी समाज व्यापारी समाज होने के कारण राजभक्त माना जाता था। विदेशी कपडे का व्यापार मारवाडी समाज का मुख्य व्यापार था। विदेशी कपडे का आयात अग्रेजी आफिसो के द्वारा होता था। मारवाडी समाज के बडे नेता या पच इन आफिसो के दलाल या मुसद्दी थे। पर मारवाडी समाज के कुछ युवक थे, जो अग्रेजी राज्य के खिलाफ विचार रखते थे और आतकवादी क्रातिकारियो के साथ उनका सम्वन्ध था। डा० कैलाशचद्र वोस का मारवाडी समाज के धनी और प्रभावशाली लोगो पर उन दिनो काफी दवदवा था। ये सव लोग नययुवको के रवैये से सख्त नाराज थे। इसी समय एक घटना मे पाच-सात युवक भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार हो गये, जिनमे भाई हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, कन्हैयालालजी चितलागिया, ओकारमलजी सराफ, ज्वालाप्रसाद कानोडिया एव फूलचन्दजी चौधरी थे। श्री घनश्यामदास विडला पर भी वारट था, पर वह कलकत्ता से वाहर होने के कारण गिरफ्तार नही

हो सके। इस घटना का समाज पर ऐसा प्रभाव पडा कि सारा नवयुवक समाज भय से कापने लगा। साथ ही कैलाशवावू के नेतृत्व मे पच लोग सरकार के पास अपनी राजभक्ति के सदेश भेजने लगे। वर्तमान मारवाडी रिलीफ सोसाइटी का नाम उन दिनो मारवाडी सहायक समिति था। इस सस्था का सचालन नवयुवको द्वारा ही होता था। बगाल मे आतकवादी आदोलन की भावना रखनेवाली दो समितिया थी—एक, युगान्तर समिति और दूसरी, अनुशीलन समिति। मारवाडी सहायक समिति नाम होने के कारण और नवयुवको की संस्था होने के कारण कैलाशवावू ने राय दी कि इस यदि सस्था का नाम न वदला गया, तो सरकार की निगाह मे मारवाडी समाज शका की दृष्टि से देखा जायगा। एक तो गिरफ्तारियो के कारण और दूसरे पहले के दो-तीन सामाजिक आदोलनो के कारण (जिनमे विलायत-यात्रा का आदोलन मुख्य था) युवक लोग पचो से मुठभेड लेने की स्थिति मे नही रह गये थे। इसलिए इच्छा न रहते हुए भी मारवाडी सहायक समिति का नाम वदलकर मारवाडी रिलीफ सोसाइटी रखा जाना स्वीकार कर लिया गया। इनसव बातो का ऐसा व्यापक प्रभाव हुआ कि युवक समाज उससे त्रस्त हो गया और सार्वजनिक काम की चर्चा वन्द-सी हो गई। परस्पर मिलना-जुलना और विचार करना भी छूट गया।

कानपुर से प्रकाशित 'प्रताप' उन दिनो हिन्दी के पत्रो मे नवयुवको का पथप्रदर्शक था। स्वर्गीय गणेशशकर विद्यार्थी के लेखो को युवक-समाज आदर की दृष्टि से देखता था। मारवाड़ी सहायक समिति का नाम बदलने पर जो स्थिति हो गई थी, उसपर विद्यार्थीजी ने 'प्रताप' मे एक वहुत ही प्रभावशाली लेख लिखा। विद्यार्थीजी की कलम मे वह शक्ति थी, वह जादू था, जिसका प्रभाव सर्व-साधारण पर पडे विना नही रह सकता था और खासकर युवक-वर्ग पर तो उनके लेखो का अत्यधिक प्रभाव पडता था।

भाई वसतलालजी की पत्नी वहुत वीमार थी। वह उनको लेकर जसीडीह गये हुए थे। 'प्रताप' के लेख को पढकर मेरे मन मे जो प्रतिक्रिया हुई, उसको विद्यार्थीजी के लेखो के साथ मैने भाई वसत-

लालजी के पास जसीडीह भेजा। मैने उन्हे लिखा—आप विचार करे, हम लोग क्या कर रहे है और जितना जल्दी हो सके, आप कलकत्ता आ जाय। बसतलालजी पर उस लेख की प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक ही थी। उन्होने मुझे लिखा—चाहे जो हो, हम चुप नही बैठ सकते, हमे कुछ-न-कुछ करना ही होगा। आप लोगो से मिलना-जुलना शुरू करे। मैं जल्दी-से-जल्दी आ रहा हू। एक सप्ताह मे ही वह आ भी गये। इस समय जो स्थिति थी उसमे पहली पक्ति के लोगो के साथ मिलना-जुलना या काम करना सम्भव नही था। दूसरी पक्ति के लोगो मे सगठन मुश्किल हो रहा था। कई दिनो की कोशिश के बाद कुछ मित्रो को इकट्ठा किया गया और एक सस्था 'ज्ञानवर्द्धिनी मित्र-मडली' के नाम से स्थापित की गई। इस सस्था के उद्देश्य मे यह साफ तौर से लिखना पडा था कि राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक कामो से इस सस्था का कोई सम्बन्ध नही होगा। यह सस्था ज्ञानवर्द्धन के कामो तक अपना कार्यक्रम सीमित रखेगी। ऊपर का सकेत उस समय की स्थिति को साफ करता है कि राजनैतिक काम मे सरकारी भय, धार्मिक काम मे ब्राह्मणो की बाधा, सामाजिक कार्यो मे पचो का आतक पूर्णरूप से नवयुवको मे व्याप्त था। यदि ऐसा न किया जाता तो सस्था का आरम्भ करना ही मुश्किल हो जाता। आज वे सब बाते कल्पना के बाहर की चीज हो गई है। मुझे उस दिन की और आज की स्थिति की तुलना करने पर स्वय भी आश्चर्य होता है। 'ज्ञानवर्द्धिनी मित्र-मडली' तो एक साधारण बहाना था। जो काम आगे करना था वह काम इस मडली के द्वारा हो नही सकता था। ऐसी स्थिति मे एक और सस्था की जरूरत महसूस होने लगी। आहिस्ते-आहिस्ते वातावरण भी बदल रहा था। पुराने लोगो के साथ सघर्ष था ही। पुराने लोगो की सस्था थी 'मारवाडी एसोसिएशन।' सरकार मे इसी सस्था और उसके सचालको का प्रभाव था। कई दिनो के सोच-विचार के बाद मारवाड़ी 'ट्रेडर्स एसोसिएशन' नाम से एक नई सस्था की स्थापना की गई, जिसके सभापति स्वर्गीय देवीप्रसादजी खेतान और मत्री श्री जगन्नाथप्रसादजी अग्रवाल चुने गये। सवाल था, इस सस्था के द्वारा वे सब काम कैसे हो, जो नवयुवक करना चाहते थे अथवा जो उन्हे करना उचित था? केवल

व्यापार की बातो से तो नवयुवको को सतोष हो नही सकता था। इस-लिए इस सस्था के अन्तर्गत कई विभाग खोले गये, जैसे ज्ञानवर्द्धक विभाग, जिसमे 'ज्ञानवर्द्धिनी मित्र-मडली' अन्तरभुक्त कर दी गई। सेवा-विभाग का मत्री भाई बसतलालजी को बनाया गया और इस विभाग के द्वारा बहुत काम हुआ। 'मारवाडी एसोसिएशन' की सारी धाक और महत्व को इस सस्था ने खत्म कर दिया, फिर भी समाज पर बडे आदमियों का जो प्रभाव था, वह तो था ही।

इसी बीच पूज्य जमनालालजी बजाज ने समाज-सुधार की दृष्टि से 'अग्रवाल महासभा' की स्थापना की बात सोची। कलकत्ता मारवाडी-समाज का खास केन्द्र था और जमनालालजी का यहा के युवको से सबध भी था। इसलिए वह अग्रवाल महासभा की चर्चा के लिए कलकत्ता आये। नवयुवको का तो पूरा सहयोग उन्हे प्राप्त था ही, पर वह चाहते थे कि पुराने विचारवाले या पच-पचायतवाले लोगो का भी सहयोग प्राप्त किया जाय। बहुत कोशिश करने पर भी जमनालालजी उनका सहयोग प्राप्त न कर सके। पर बम्बई तथा दूसरे प्रातो मे उन्हे सहयोग मिला। वर्धा मे अग्रवाल महासभा का प्रथम अधिवेशन हुआ, जिसमे श्री देवीप्रसादजी खेतान और भाई बसतलालजी कलकत्ता के प्रति-निधि के रूप मे सम्मलित हुए। लेकिन उसी समय जमनालालजी के परि-वार मे एक दुखद मृत्यु हो जाने के कारण अधिवेशन विशाल रूप मे नही हो सका। महासभा का दूसरा अधिवेशन बम्बई मे बडी धूमधाम से हुआ। प्रसिद्ध सनातनी और समाज के पुराने घराने के वयोवृद्ध श्री रामलाल गनेडीवाल को सभापति चुना गया। इस अधिवेशन मे कल-कत्ता के नवयुवको ने काफी संख्या मे भाग लिया। ताराचन्द घनश्याम-दास[1] की ओर से जयनारायणजी पोद्दार भी उस अधिवेशन मे सम्मि-लित हुए और उन्होने कार्रवाई मे उत्साह-पूर्ण हिस्सा लिया। यह सम्मे-लन बहुत ही सफल रहा। कर्मवीर गाधी भी इस सम्मेलन मे एक दिन के लिए आये और बोले। पचास हजार रुपये का चन्दा तत्काल इकट्ठा

---

१. कलकत्ता की मशहूर पुरानी मारवाडी फर्म

करके उनको दिया गया। इमी अधिवेशन मे छ लाख रुपयो से अग्रवाल कोष की स्थापना हुई। समाज-सुधार के प्रस्तावो मे वाल-विवाह के प्रस्ताव पर काफी वाद-विवाद के वाद यह तय हुआ कि वारह वर्ष से पहले लडकी और सोलह वर्ष से पहले लडके का विवाह न किया जाय। इसके साथ ही सशोधन के रूप मे यह छूट दे दी गई कि अगर किसीको इस सबध मे आपत्ति हो, तो वह स्थानीय पचायत की अनुमति लेकर वारह वर्ष से कम उम्र की लडकी और सोलह वर्ष से कम उम्र के लडके के विवाह मे सम्मिलित नही होगे। कहना नही होगा कि भाई वसतलालजी प्रतिज्ञा करनेवालो मे से थे। इसके वाद तो प्रतिज्ञा करने का एक अभियान-सा चल पडा, जिसमे भाई वसतलालजी ने काफी काम किया। आज ये सब वाते साधारण और बहुत हल्की लगती हैं, पर उस समय ये बहुत बडी-बडी वाते थी। इस प्रतिज्ञा करनेवालो को अपार कठिनाइयो का सामना करना पडता था। ऐसे अवसर भी आये, जब भाई अपनी बहन की चुनरी उढाने तक नही जाते थे। वाल-विवाह के आन्दोलन ने एक विशेष आन्दोलन का रूप लिया और भाई वसन्तलालजी को अपने साथियो के साथ काले झण्डो का प्रदर्शन भी करना पडा।

महासभा का तीसरा अधिवेशन कलकत्ता मे हुआ, जो बहुत ही प्रभावशाली और वृहत् रूप मे था। पचायत के लोग इस अधिवेशन मे सम्मिलित नही हुए। अधिवेशन के वाद महासभा का कार्यालय कलकत्ता मे ही रहा। भाई वसन्तलालजी महासभा के प्रधान मन्त्री चुने गये। भाई पद्मराजजी जैन के सहयोग से महासभा का काम और प्रभाव मारवाडी समाज मे खूब बढा। हजारो शाखाए भारत के बडे-बडे शहरो और ग्रामो मे स्थापित हुई, जिनके द्वारा वाल-विवाह आदि का विरोध किया गया। इन सारे अभियानो मे वसन्तलालजी का प्रमुख स्थान था। इन सामाजिक आन्दोलन के बराबर-बराबर राष्ट्रीय आन्दोलन भी जोर पकडता जा रहा था। पूज्य जमनालालजी के प्रयत्न से कांग्रेस कमेटी की स्थापना करके बडा बाजार मे कांग्रेस का काम आगे बढाने का प्रयत्न किया गया। भाई पद्मराजजी जैन मन्त्री और वसन्तलालजी सहायक मन्त्री बनाये गए। इस प्रकार सामाजिक और राजनैतिक कार्य

साथ-साथ होने लगे।

पूज्य महात्माजी के आह्वान पर सन् १९२१ का आन्दोलन शुरू हुआ। वसन्तलालजी ने प्रमुख भाग लिया। फलत: वह गिरफ्तार किये जाकर प्रेसीडेंसी जेल मे भेज दिये गए। उन दिनो जेल जाना मामूली बात नही थी, फिर वसन्तलालजी का तो परिवार भी काफी बडा था। उनका विवाह हुए भी चार-पाच वर्ष ही हुए थे। इन सब कठिनाइयो की परवा किये बिना ही वसन्तलालजी ने आन्दोलन मे पूरा भाग लिया। वसन्तलालजी को डेढ वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। मेरा ख्याल है कि मारवाडी समाज मे देश के लिए जेल जाने का यह पहला उदाहरण था। वसन्तलालजी की मा उनके जेल-जीवन की बातो से बहुत ही दुखी हो गई थी। पर अन्त मे उन्होने हम लोगो से कहा—"बसतियो शिवरात्रि के दिन जनम्यो है, वो भोलो शभु है, ऊ की रक्षा भगवान शिवजी महाराज ही करेगा।" इस आन्दोलन मे देश-बन्धु दास, सुभाषचन्द्र बोस तथा बगाल के अनेक दूसरे नेता जेल गये। मौलाना अबुल कलाम आजाद, मौलाना अकरम खा (जो बाद मे मुस्लिम लीगी बन गये), बडा बाजार से पद्मराजजी जैन, अम्बिकाप्रसादजी बाजपेयी, भाई मूलचन्दजी अग्रवाल, भोलानाथजी बर्म्मन, माधवजी शुक्ल, लक्ष्मण नारायणजी गर्दे आदि अनेक लोग जेल मे वसन्तलालजी के साथी हो गये। बाद मे महात्माजी ने चौरीचौरा काण्ड होने पर आन्दोलन बन्द कर दिया और यह एलान कर दिया कि जो जेल गये है वे वहा न रहना चाहे, तो सरकार से अनुरोध करके बाहर आ सकते है। वसन्तलालजी ने ऐसा नही किया। जो लोग जेल गये है, वे समझ सकते है कि आन्दोलन की गति धीमी पड जाने पर जेल मे रहनेवालो की मनोदशा क्या होती है। जेल के अधिकारियो का व्यवहार कितना क्रूर और यातनामय बन जाता है! फिर आन्दोलन का अनिश्चित काल तक बद हो जाना कितना दुखद होता है। जिन लोगो की सजा कम थी, वे तथा दूसरे लोग भी आहिस्ते-आहिस्ते बाहर आने लगे। पर वसन्तलालजी की सजा तो बहुत थी। उनके साथ जेल में बहुत कम आदमी रह गये थे, पर वह अपने आनन्दी स्वभाव के कारण दुख-सुख की परवा

किये विना जेल की अवधि पूरी कर रहे थे ।

जेल से वाहर आने पर वह फिर अपने सामाजिक कार्यो मे लग गये । अग्रवाल महासभा का काम तथा दूसरे सामाजिक काम करने लगे—वाल-विवाह और वृद्ध-विवाहो को रोकने के आन्दोलनो तथा उनके परिणामो से हम तग आने लगे थे और ऐसा सोचने लगे थे कि हमे समाज-सुधार का कोई क्रान्तिकारी कदम उठाना चाहिए, जिससे समाज मे क्राति की भूमिका तैयार हो सके । इसी समय हमने सुना, एक वाल-विधवा जानकीदेवी साह वैधव्य-दु ख से तग आ गई है और पुनर्विवाह करना चाहती है । पर पुनर्विवाह हो कैसे ? यह एक वडा सवाल था । काम तो वडा भारी था, पर जोश और उत्साहवश इसकी कौन परवा करता था ! जानकीदेवी को उसके घर से तो ले आये, पर अव उसके विवाह की व्यवस्था कैसे हो, यह एक समस्या थी । पुराने आर्यसमाजी भाई नागरमलजी लील्हा विवाह करने के लिए तैयार हो गये । नागर-मलजी की उम्र करीव छत्तीस साल की थी, जानकीदेवी की वाईस वर्ष की । दोनो को एक-दूसरे को दिखलाकर विवाह तय हो गया । विवाह के लिए स्थान का सवाल था । आर्य समाज मदिर तो मिल सकता था, पर वहा विवाह हो, यह हम पसद नही करते थे । भाई नागरमलजी मोदी अपना मकान देने के लिए तैयार थे । जानकीदेवी को उनके घर पर ही छिपाकर रखा गया था, किन्तु वह मकान छोटा था । इसलिए छाजूरामजी चौधरी का मकान ठीक किया गया । यह मकान वहुत सुन्दर और वडा था । साथ ही, यह वडावाजार के वीच मे था । छाजूरामजी से वात करने पर वह सहर्ष राजी हो गये । यह विवाह अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है । इसका इतिहास लिखने के लिए अलग लेख लिखा जा सकता है । इस कार्य मे वसन्तलालजी का महत्वपूर्ण हाथ रहा । परि-णाम-स्वरूप पचायत की सभा मे वारह समाज-सुधारको को इस विवाह मे भाग लेने के लिए अलग-अलग इल्जाम लगा कर जाति मे वाहर कर दिया गया । भाई वसन्तलालजी को भी जाति से वाहर किया गया । जाति-वाहर का भी एक आन्दोलन वन गया । वसन्तलालजी का निजी कुटुम्व वडा होने के कारण और भाइयो आदि मे विचारो की भिन्नता

होने के कारण उनको तथा उनकी पत्नी को काफी परेशानिया उठानी पडी, परन्तु वसन्तलालजी के पिता पूज्य रामदेवजी ने उनके कामो का पूरा समर्थन किया और उनके भाइयो ने भी साथ दिया।

वसन्तलालजी के छोटे भाई शुभकरण का विवाह था। इस विवाह के समय राष्ट्रीय आन्दोलन और खिलाफत-आन्दोलन चल रहा था। खिलाफत-आन्दोलन के कारण वसन्तलालजी का मुसलमान भाइयो से गहरा सम्बन्ध था, इसलिए उस विवाह मे उनको भी निमन्त्रित किया गया। स्वर्गीय देशबन्धु दास भी इस विवाह मे पधारे। उनके साथ मौलाना आजाद, अकरम खा और पचासो अन्य मुसलमान आये। मुसलमानो को भोजन कराते समय समाज के कुछ लोगो को नाराजगी रही। उनके भोजन करने के बाद झूठी पत्तल उठाने के लिए नौकरो ने इन्कार कर दिया। कुछ मिनटो मे ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि भाई वसन्तलालजी ने उन मुसलमानो को बुलाकर और भोजन कराकर एक हगामा-सा कर दिया है। लेकिन वसन्तलालजी ने अपने मुसलमान दोस्तो की जूठी पत्तलो को उठाकर सारे लोगो को चकित कर दिया। मुसलमानो को बुलाकर घर पर भोजन कराना और फिर उनकी झूठी पत्तलो को उठाना साधारण बात नही थी। इसकी चर्चा और विरोध बहुत रहा, पर वसन्तलालजी का उत्साह और उनकी दृढता ऐसी थी कि उनके घर के लोग और दूसरे विरोधी भी उनसे नाराज नही होते थे।

उनको गिरफ्तार कर लिया गया और वगाल के कई नेताओ के साथ उनको डेढ वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गई। जेल मे कलकत्ता के तथा वगाल के अनेक नेताओ और कार्यकर्त्ताओ से भाई वसतलालजी का सम्वन्ध हो गया और वह आदोलन के खास आदमी माने जाने लगे। अपने विनोदी और और सरल स्वभाव के कारण वह जेल मे वहुत ही प्रिय रहे। कोई घटना होने पर वसतलालजी कहा करते थे—आनन्द हो गया। जेल मे सव लोगो को एक-एक काच का गिलास मिलता था। सयोगवश किसीके हाथ से गिलास गिरकर टूट जाता तो टूटने की आवाज सुनकर जिस सज्जन का गिलास टूटता, उनको सम्वोधन करके वसतलाल-जी तुरन्त कहते—आनन्द हो गया क्या ? वह इस तरह दु ख को स्वभावत सुख का रूप दे दिया करते थे। उनके इस स्वभाव के सम्वन्ध मे एक घटना और याद आती है। सन् १९३२ मे जेल से छूटने के वाद हम लोग स्वास्थ्य-सुधार की दृष्टि से राजस्थान गये। वसतलालजी के मुकुन्द-गढ-स्थित मकान मे एक ब्राह्मण-परिवार रहता था। उनके लडके की नाक मे तकलीफ थी। इसलिए उसका आपरेशन कराने के लिए उस लडके को और उसकी मा को पिलानी ले गये। सयोग से उस लडके की मा ऊट से गिर पडी और उसे चोट लगी। वह गर्भवती थी। वसतलालजी ने मुझे सूचना दी—"भाईसाहव, आज तो आनन्द जोर को होगो।" कहने का मतलव यह कि वह किसी घटना से घवराते नही थे और उसको अपनी सरलता के कारण विनोद मे वदल दिया करते थे। जेल के कष्टो और मानसिक आदोलन की तीव्रता के समय जव-जव निराशा, दु ख और असफलता सामने आती, वह अपनी भाषा मे कहते थे, "आटो-साटा लागकर सुख होवा हालो है" यानी जो दुख आता है, या असफलता आती है, वह सुख और सफलता देने के लिए आती है।

उन दिनो समाज मे मृतक विरादरी भोज हुआ करता था। साधा-रण स्थिति के आदमी को अपना घर या जो भी सम्पत्ति होती, वह वेच-कर अथवा ऋण लेकर मृतक विरादरी भोज करना पडता था, इसका दु खद अनुभव नवयुवक समाज किया करता था।

अन्त मे इसके लिए पिकेटिंग करने का निश्चय किया गया और

पिकेटिंग का सगठन करने मे भाई बसतलालजी ने बहुत ही उत्साहपूर्ण काम किया। मृतक बिरादरी भोज के स्थानो पर जाकर जोरदार पिकेटिंग की गई। कई जगहो पर भोजन करनेवालो के सामने लेटना भी पडा। विरोधियो की ओर से इस आदोलन का जोरदार विरोध किया गया और सत्याग्रहियो पर जूठी पत्तल और गन्दा पानी भी गिराया गया, पर इसका कुछ दिनो मे इतना व्यापक और गहरा प्रभाव हुआ कि बिहार, मध्य प्रदेश आदि प्रातो मे भी यह पिकेटिंग शुरू हुई और मृतक बिरादरी भोज बन्द हो गया।

मारवाडी समाज मे पर्दा-प्रथा भी बहुत जोरो से प्रचलित थी। नवयुवक समाज को इस प्रथा को तोडने के लिए काफी आदोलन करना पडा। भाई बसतलालजी के नेतृत्व मे सन् १९२९ मे एक शिष्टमडल पर्दा-प्रथा के विरोध मे आदोलन करने के लिए बगाल, बिहार, उडीसा, मध्यप्रदेश आदि स्थानो मे गया और जगह-जगह सभाए आदि करके पर्दा-प्रथा के विरोध मे आदोलन शुरू किया गया। इस आदोलन को स्थायी बनाने के लिए सन् १९२९ की कार्तिक शुक्ल ११ (देवोत्थान एकादशी) के दिन सारे भारतवर्ष के नगरो मे 'पर्दा निवारक-दिवस' मनाया गया, जिसका अधिकाश श्रेय भाई बसतलालजी को दिया जा सकता है। मतलब यह कि विलायत-यात्रा, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, मृतक बिरादरी भोज और पर्दा-निवारण आदि कोई भी आदोलन सन् १९२० से सन् १९५६ तक, उनकी मृत्युपर्यन्त नही हुआ, जिसमे उन्होने हिस्सा न लिया हो। इसी प्रकार राजनैतिक आदोलन मे सन् १९२० से लेकर सन् १९४२ के 'करेंगे या मरेंगे' आदोलन तक ऐसा एक भी आदोलन नही हुआ, जिसमे वह जेल न गये हो और अधिक-से-अधिक भाग न लिया हो। सेवा और शिक्षा के काम मे भी वह सदा आगे रहते थे। सन् १९३४ मे बिहार मे जो भयकर भूकम्प हुआ था, उस समय की बात है। उनकी स्त्री के बच्चा होनेवाला था और पीडा हो रही थी। ऐसी हालत मे वह उसे छोडकर भूकम्प-पीडितो की सेवा करने चले गये। बसतलालजी एक ऐसे बहादुर समाज-सुधारक और देशभक्त थे, जिन्होने अपने घर की, अर्थ की और परिवार की जरा भी परवा किये बिना देश

और समाज की सेवा की ।

सन् १९४५-४६ मे ऐसा लगा था कि देश निश्चय ही स्वाधीन होगा और तब जो विधान-सभाए बनेगी, वे स्वाधीन देश की विधान-सभाए होगी। इसलिए उनकी इच्छा हुई कि वह विधान-सभा मे जाय। सन् १९४६ की फरवरी मे जो चुनाव हुए, उनेमे वह चुनाव लडने के लिए खडे हुए और प्रबल बहुमत से निर्वाचित हुए। तबसे बराबर पश्चिम बगाल विधान-सभा के सदस्य रहे। जिस प्रकार स्वाधीनता-आदोलन मे उन्होने काम किया उसी प्रकार देश के शासन-सचालन और निर्माण-कार्य मे भी उत्साह और जोश से काम करते रहे। सन् १९५२ मे जो चुनाव हुए उनमे वह बगाल के वीरभूम जिले से विधान-सभा के सदस्य चुने गये, जहा बगाली भाइयो के सिवा अन्य किसी के वोट नही थे। इस चुनाव मे सफलता बसतलालजी की बगाल मे लोकप्रियता का एक प्रमाण थी।

बसतलालजी अपने जीवन मे सफल रहे। वह अपने विचारो और सिद्धातो को बराबर अमल मे लाते रहे। उन्होने अपने बडे पुत्र का विवाह माहेश्वरी समाज मे किया और अपने द्वितीय पुत्र का विवाह एक बाल-विधवा से किया। उनकी स्त्री रमादेवी ने उस जमाने मे पर्दा छोडा और सामाजिक कार्य मे हिस्सा लिया जब मारवाडी समाज की इनी-गिनी महिलाए ही पर्दा-प्रथा से मुक्त हुई थी। इस प्रकार बसतलालजी का जीवन करीब ४० वर्ष तक निरन्तर देश और समाज की सेवा मे लगा रहा। वह हृदय से, स्वभाव से सरल, और कोमल, व्यवहार से उदार और समाज की सेवा से प्रेरित, बहुत ही सच्चे साथी थे। व्यक्तिगत दृष्टि से भी ऐसे मित्र और साथी का वियोग बडा ही दुखद होता है।

अतिम कुछ वर्षों मे मेरा उनके साथ मतभेद रहा, पर आखिर मे उनकी बीमारी ने मतभेद को भी इस तरह धो डाला कि आज उसका कोई चिन्ह भी नही। मृत्यु से कुछ ही दिन पहले हम दोनो ने हृदय की एकता का सुख अनुभव किया। यदि यह न होता तो आज मेरे दु ख का अत कहा था! यह ईश्वर की कृपा थी और थी उनके हृदय की सरलता एव सहृदयता।

२ : श्रीमती गंगादेवी मोहता

सन् १९२१ मे कलकत्ता प्रेसीडेसी जेल मे स्वर्गीय भाई बसतलाल जी मुरारका से मुलाकात के वक्त गगादेवी मोहता से परिचय हुआ था उस समय सारे मारवाडी समाज के अग्रवाल, ओसवाल, माहेश्वरी आदि किसी समाज मे किसी ऐसी महिला को मैं नही जानता था या थी ही नही, जो घूघट निकाले बिना पुरुषो मे आये-जाये और बातचीत कर सके। इस महिला का साहस, निर्भीकता और उत्साह मुझे उस दिन अद्भुत लगा था। इसके बाद तो परिचय बढता गया। कितने ही स्थानो और मौको पर साथ-साथ काम करने का अवसर मिला। उन दिनो भाई बाल कृष्णजी मोहता और गगादेवी मारवाड़ी-समाज मे समाज-सुधार के आदोलन के एक खास अग ही नही, बल्कि अगुवा माने जाने लगे थे। गगादेवी ने न मालूम कितने घरो मे जाकर अनेक महिलाओ को पर्दे के पाप से मुक्त किया था। सार्वजनिक रूप से पर्दा-प्रथा के विरुद्ध आदोलन करने की बात सोची गई तो क्या किया जाय, कैसे किया जाय, यह सवाल विकटता के साथ सामने आया, जिसको आज याद करने पर आश्चर्यजनक हसी आती है। कुछ भी नही किया जा सकता, ऐसा लगने पर अत मे यह तय किया गया कि जो दस-पाच मित्र अपनी स्त्रियो का पर्दा छुडा सके वे सब साथ-साथ विक्टोरिया मेमोरियल मे मारवाडी समाज के लोगो के सामने से निकले या घूमते रहे। कहना नही होगा कि उनमें गगादेवी और बालकृष्णजी तो विशेष थे ही। शायद यह सन् १९२६ की बात है। इसके बाद ही निश्चय किया गया कि पर्दा-प्रथा के विरुद्ध एक शिष्टमडल अनेक स्थानो पर जाय और इस बात की कोशिश करे कि प्रत्येक स्थान पर कार्तिक शुक्ल एकादशी को पर्दा-निवारण दिवस की सभा आदि कर पर्दे के विरुद्ध प्रस्ताव पास किया जाय। कलकत्ता मे पर्दा निवारक दिवस की सभा का नजारा शायद पहले की सब सभाओ से अपने ढग का अलग था। सभा मे कार्ड द्वारा प्रवेश का प्रतिबंध लगाने पर स्वयसेवको के सिवा पुलिस की सहायता लेना जरूरी हो गया। सभासदो का मिलना जितना मुश्किल था, उसको आज किसी तरह भी

कल्पना नही की जा सकती। अन्त मे स्वर्गीय भाई देवीप्रसाद खेतान आदि से वात करके श्रीमती जानकीदेवी मुसद्दी (खेतान वन्धुओ की वहन) को राजी किया। लम्वी कहानी है यह और आज के लोगो के लिए आश्चर्यजनक और विश्वास करने लायक भी शायद न हो। कहना इतना ही है कि इन सब स्थितियो को वदलने मे तथा आज जो सामाजिक स्वतत्रता प्राप्त हुई है, उसको लाने मे गगादेवी का बहुत वडा हिस्सा रहा है। मै जिस मकान मे रहता था वहा गगादेवी आती तो पास के लोग उनको अपने कमरे मे आने देना पसन्द न करते। पर गगादेवी मान-अपमान का ख्याल किये बिना अपना काम करती रहती। स्वर्गीय भाई मूलचन्दजी उनको मजाक मे आराकाटी कहा करते। 'आराकाटी' लोगो को बहकाकर मारीशस, फीजी आदि देशो मे जाने के लिए भरती के हेतु ले जानेवालो को कहते थे। इस प्रकार गगादेवी ने सामाजिक क्राति के कदमो को आगे वढाने मे अपने जीवन का वह हिस्सा दिया जव लोग राग-रग, सुख-स्वप्न मे भूले रहते है। अपने एकमात्र लडके चिरजीव ब्रह्मदेव का विवाह एक अनजान कुल मे विना किसी रीति-रिवाज के (दहेज तो कल्पनातीत वात हे, जिसका जिक्र करना वालकृष्ण और गगादेवीजी का अपमान करना है) आज से २५-२६ वर्ष पहले किया था। यह विवाह इस तरह का शायद पहला ही था। गगादेवी ने वाल-विवाह, वृद्ध-विवाह परदा-प्रथा के विरोधी तथा विधवा-विवाह आदि सुधार-आदोलनो मे अधिक-से-अधिक भाग लिया।

स्वाधीनता का आदोलन चल रहा था तव भी वह चुप नही बैठी। एक जुलूस मे भाग लेने के कारण उनको गिरफ्तार किया गया और जुर्माने की सजा हुई। जुर्माना न देने पर जेल जाना अनिवार्य था। उन दिनो न तो कोई जुर्माना देता था और न अदालत की कार्रवाही मे किसी प्रकार का हिस्सा लेता था। वहन गगादेवी का जुर्माना दूसरे सज्जन देने लगे तो उन्होने कहा कि मेरा जुर्माना यदि अदा कर दिया जायगा तो इस अन्याय को किसी भी हालत मे वर्दाश्त नही कर सकूगी। इस प्रकार न मालूम अपने जीवन के कितने प्रसगो मे उन्होने अपनी तेजस्विता एव निर्भीकता का परिचय दिया था।

गंगादेवी की बीमारी मे श्री बालकृष्णजी ने जो सेवा की, वह साधारण आदमियो का काम नही है। शायद ही कोई पुरुष स्त्री की इतनी सेवा कर सकता है। पाच-सात दिन पहले ही भगवानदेवी, जो किसी समय उनकी रगरूट रही थी, उनसे मिलने गई और जिस स्थिति का वर्णन किया, वह गजब है। गगादेवी ने कहा कि मै जीना नही चाहती, पर उनकी सेवा मुझे मरने नही दे रही है।

३ : 'दीदी' सुशीलादेवी

सन् १९२८ की बात है। चार पंजाबी बहनो से परिचय हुआ। एक थी शातादेवी, जो हमारे स्कूल मे पढाती थी। दूसरी थी कौशल्यादेवी, जो आर्य कन्या महाविद्यालय की थी। तीसरी थी लीलादेवी, जो कलकत्ता के डेन्टल कालेज की विद्यार्थी थी। चौथी थी सुभद्रादेवी, जो बड़ा बाजार की राजनैतिक गतिविधियो मे प्रमुख भाग लेती थी। इन चार बहनो से परिचय हुआ। देश-समाज के बारे मे बाते हुई। इन बहनो मे देश-सेवा की विशेष लगन थी।

लीलादेवी तो काफी उग्र विचारो की थी और वह चाहती थी कि देश मे कोई विशेष क्रान्तिकारी आदोलन हो, जिसमे योग दिया जाय। एक दिन उन्होने कहा कि हमारी एक बहनजी है, उनसे आपको मिलाना है। मैं स्वर्गीय सर सेठ छज्जूराम चौधरी के यहा गया। वहा शांतादेवी ने एक बहन से मेरा परिचय कराया, जिनका नाम था सुशीलादेवी। बहुत दुबली-पतली निहायत गौर वर्ण और बड़ी-बड़ी आखे, जिनमे एक विशेष प्रकार की सात्विक ज्योति के दर्शन होते थे और गम्भीर शात मुद्रा। दोनो हाथ जोड़कर दोनो ओर से प्रणाम-नमस्कार के बाद सुशीलाजी ने कहा, "मै माता से कई दिनो से कह रही थी कि आपसे मिलना है।" उन बहन मे शालीनता और स्नेहशीलता के विशेष दर्शन हुए। उस समय के

बाद तो अनेक बार हम लोग मिले ।

साइमन-कमीशन के बहिष्कार के दिन थे । चारो ओर देश मे उग्रता का वातावरण था, बडी उत्तेजना थी और थी कुछ कर गुजरने की तीव्र उत्कठा । ऐसे मौके पर साइमन-कमीशन के बहिष्कार के जुलूस का नेतृत्व करते हुए स्वर्गीय लाला लाजपतरायजी पर पुलिस की लाठी का प्रहार हुआ । जवाहरलालजी पर लखनऊ मे पुलिस की लाठी पडी । क्रातिकारी नवयुवको ने इस सबको देश का भीषण अपमान माना और उसका बदला लेना तय किया । इन युवको मे भगतसिह, आजाद और राजगुरू आदि अनेक युवक थे । इनको सुशीलाबहन अनेक तरह से सहयोग देती थी । सुशीलाजी शात-गम्भीर भाव से चुप रहकर काम करती थी । विशेष बातचीत, मिलना-जुलना पसद नही करती थी, पर जो उनके सम्पर्क मे आता, उनके प्रति सहज ही एक आदर की भावना पैदा हो जाती । उन्ही दिनो साडर्स की लाहौर मे हत्या हुई । उसके बाद सेन्ट्रल असेम्बली मे भगतसिह और बटुकेश्वर दत्त ने बमकाड किया । उन्ही दिनो लाहौर जेल मे जतीन्द्रनाथ दास का भूख-हडताल मे प्राणान्त हुआ । देश मे चारो ओर उथल-पुथल के दिन थे वे । जरा भी सोचनेवाला देश के लिए कुछ करने की तमन्ना लिये फिरता था । सुशीलाबहन से इन घटनाओ पर विचार चलता, पर वह अपनी बात बहुत कम कहती । तब भी ऐसा लगता था कि उस छोटे से दुबले-पतले हड्डियो के ढाचे मे एक भीषण आग जल रही है देशप्रेम की मानो पर्वत के गर्भ मे ज्वाला-मुखी धधक रहा है । उन्होने बडा बाजार की कुछ महिलाओ और लड-कियो की एक मडली बटोरकर भगतसिह डिफेन्स फड के लिए रकम जमा करने के उद्देश्य से महिला नाटक का आयोजन जिस साहस से किया था, उसको मैं कभी भूलता नही । बडा बाजार का क्षेत्र तब सामा-जिक प्रगति और महिला जागृति की दृष्टि से बहुत पिछडा था । सार्व-जनिक क्षेत्र मे काम करनेवाली कोई महिला दीख न पडती थी । तब भी सुशीलाजी ने अपनी पजाबी बहनो के सहयोग से यह जो साहसपूर्ण कार्य किया था, वह उनके ही बूते का था ।

देश मे ऐसा वातावरण तैयार हो रहा था कि बूढे-जवान, स्त्री और

पुरुष सब देश के लिए कुछ करने की प्रेरणा से प्रेरित थे। सुशीलाबहन तो पहले से ही शपथ ले चुकी थी देश की स्वतत्रता के लिए अपने को होमने की। सुशीलाजी मे एक विशेषता थी कि वह अपनेको अधिक सामने नही आने देती थी और भीतर-ही-भीतर बहुत काम करके काम करनेवालो को सहयोग देती थी। भयकर क्रातिकारी विचार रखते हुए भी वह ऊपर से बडी शात नजर आती थी। वह उत्तेजना या उग्रता से बाते नही करती थीं।

वह बहुत अच्छी वक्ता थी। इसका एक उदाहरण देना अच्छा होगा। १९३० मे कलकत्ता की दमदम जेल मे एक बीस वर्ष का नवयुवक सजा पाकर आया। वह बीमार हो गया। मैं उसके पास गया और हालचाल पूछा तो उसने बताया कि कलकत्ते से मेरा कोई सम्बन्ध नही, मै यहा किसीको नही जानता। मैं तो योही घूमने कलकत्ता आया था। एक पार्क मे मीटिंग हो रही थी। मैं सयोगवश वहा चला गया, तो देखा कि एक बहनजी, जो देवी जैसी लगती थी, बहुत ही उज्ज्वल खादी की साड़ी पहने व्याख्यान दे रही है। मैं क्या कहू, उनके व्याख्यान मे जादू था, जादू। मैं पागल हो गया। अपनी सोलह वर्ष की युवा स्त्री, बूढी मा और छोटी-सी बच्ची सबकी याद और जिम्मेदारी भुलाकर मैंने निश्चय कर लिया कि अब देश पर मर-मिटने का यह समय है और आदोलन मे शरीक हो गया। मुझे उन बहनजी के व्याख्यान ने जेल मे ला पटका। वह दुखी था। घबरा गया था। मैंने उससे कहा कि तुम घबराते हो तो जेल से छुटकारा मिल सकता है। माफी मागने पर तुरन्त बाहर जा सकते हो। वह रोने लगा। माफी किस बात की, मैंने गुनाह थोडे ही किया है। बहनजी ने कहा था, जैसे अपनी मा सबको प्यारी है, भारतमाता आज भी विदेशियो के हाथो अपमानित हो रही है। मा की सेवा करने के अपराध मे हमारे भाई फासियो पर लटकाये जाते है, जेलो मे ठूस दिये जाते हैं, इस स्थिति को कोई भी मा का सच्चा पुत्र बर्दाश्त नही कर सकता। इसका प्रतिकार करना और देश को स्वतत्र कराना मां के प्रत्येक बेटे का परम कर्त्तव्य है। इसलिए मैंने सरकारी कानून की अवज्ञा करके विदेशी कपडे की दुकानो पर पिकेटिंग की और सरकार ने सजा

दें दी। मैं नही समझता कि मैं अपने देशवासियों से यह कहूं कि आप विदेशी कपडा न ले और आज से स्वदेशी वस्त्र ही पहने तो उसमे क्या अपराध है। इसलिए माफी मागने जैसा अपमानभरा कार्य करना उस देवी के प्रति अन्याय होगा। मैं उसके मानस को टटोल रहा था, पर उस पर तो सुशीलाजी का व्याख्यान जादू कर चुका था।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण सुशीलाजी के बारे मे दिये जा सकते है। अप्रेल सन् १६३० मे चटगाव मे शस्त्रो के कारखानो पर आक्रमण हुआ और उसकी लूट की गई। उसके नेता श्री अनन्तसिंह और लोकनाथपाल आदि अनेक युवक गिरफ्तार हुए और उनपर मुकदमा चला। पैरवी के लिए रुपया इकट्ठा करने के लिए अनन्तसिंह की बहन श्रीमती इन्दुमती कलकत्ता आई। सुशीलाजी और हम लोगो से वह मिली। सुशीलाजी ने उनकी बहुत मदद की। इसी प्रकार अनेक फरार लोगो को छिपाने मे और सहायता करने मे सुशीलाजी का पूरा हाथ रहता था।

एक बार एक फरार क्रातिकारी अपनेको छिपा सकने मे असमर्थ हो गया और गिरफ्तार होने की स्थिति आ गई। गिरफ्तार होने पर बहुत तरह के गुप्त रहस्य खुलने का अन्देशा रहता है। इसलिए यह निश्चय किया गया कि गिरफ्तार होने पर फासी की सजा होगी ही, इसलिए किसी अग्रेज अफसर को मारकर वही मर जाना अच्छा है और ऐसा ही किया गया। वे सब बाते सुशीलाजी की सलाह और सूझ-बूझ की थी और उनकी सलाह का क्रातिकारी दल के लोग बहुत आदर करते थे। उनके जीवन का यह एक क्रातिकारी पहलू है। लेकिन यह अप्रकट था, गुप्त था। बाहर से वह समाज-सुधार और शिक्षा-प्रसार आदि के काम मे लगी रहती थी। सुशीलाजी का बाहरी रूप क्रातिकारी नही था। वह अधिक परिश्रम के कारण अस्वस्थ रहने लगी थी। उन्होने कलकत्ता से बाहर जाना उचित समझा। इसीलिए वह शायद दिल्ली चली गई। वहा वह गाधीजी से मिली और अपनी सब बाते उनसे कही।

अनेक लोगो ने उनके सम्बन्ध मे अपने सस्मरण लिखे होगे, पर मुझे तो उनके कलकत्ता के आपबीते सस्मरण और उनका थोडे दिनो का साथ बहुत ही महत्वपूर्ण और प्राणवान लगता है।

४ : मोतीलाल तेजावत

मोतीलालजी तेजावत उस युग के आदमी थे जब देश अग्रेजी शासन के अधीन ही नही था, उसके बहुत बडे हिस्से पर अग्रेजो के गुलाम देशी राज्यो के अत्याचार वहा की जनता पर, खासकर पिछडे वर्ग के लोगो पर, नाना रूपो मे हो रहे थे। लेकिन इस युग मे देश एक करवट बदलने लगा था। अत्याचारो का, शोषण का, उत्पीडन का, उसे भान होने लगा था और ऐसा सोचा जाने लगा था कि इस स्थिति का प्रतिकार भी हो सकता है क्या? वेदनाए सीमा पार करके एक ऐसी कराह पैदा करने लगी थी, उनमे ऐसी टीस उठने लगी थी कि जो आदमी का दिल दहला दे। सारे देश मे यह हालत किसी-न-किसी रूप मे थी, पर देशी राज्यो मे इनकी भयकरता पिछड़े वर्ग के लोगो पर भयानक रूप मे ढहती थी। तरुण मोतीलाल ने वे दृश्य आखो देखे और उनका मन हृदय, विचार इस स्थिति का प्रतिकार करने का वन गया। वह किसी वात की भी परवा किये विना उस आग मे कूद पडे। आर्त्त भील तथा वैसे ही लोगो को नेता मिल गया और काम आगे बढने लगा।

मोतीलालजी के जीवन पर हम विचार करे, तो यह स्पष्ट पता लग जायगा कि उनके सामने किसी प्रकार का कोई आकर्षण नही था। उन्होने अपने लिए कुछ सोचा ही नही कि मेरे इस कदम उठाने का क्या परिणाम हो सकता है। उन्होने एक आर्त्त और पीडित समाज की आवाज सुनी और उनका सगठन करके प्रतिकार करने की कोशिश की। थोड़े ही समय मे भील जनता पर उनका अद्भुत प्रभाव हो गया और मोतीलालजी की वाणी भीलो की वाणी वन गई। स्थानीय राजाओ पर इसका असर पडा। पर वे स्थिति का सामना करने की हिम्मत नही कर पा रहे थे। उधर मोतीलालजी ने घोषणा कर दी कि "हकम और हासिल (कर) नही।" इस प्रकार यह आन्दोलन बडे रूप मे आगे बढने लगा। एक बडी सभा मे गोलिया चली और बारह सौ भीलो की नृशंस हत्या की गई। मोतीलालजी को भीलो ने बचा लिया और वह

सात-आठ वर्ष फरार रहे। इसके बाद देश स्वाधीन हुआ तबतक का समय उन्होने प्राय जेलो मे ही बिताया।

इस प्रकार तरुण मोतीलाल साठ वर्ष का बूढा बन गया। जवानी की सारी हविस तथा सुख-सुविधा प्राप्त करने के सारे साधन इस तपस्वी तरुण ने देशभक्ति की आग मे होम कर दिये। लगातार तीस वर्षो तक यह आदमी या तो इधर-से-उधर भटकता रहा या जेलो मे बन्द रहा। पर इस वीर तपस्वी के मन मे कभी किसी प्रकार की कमजोरी नही आई। वह सचमुच तेजावत थे। उनकी वृत्ति मे सच्ची तपस्विता थी, वाणी मे तेज था और वह आन-बान के आदमी थे।

ऐसे देशभक्त का दर्शन सन् १९४० मे उदयपुर मे पूज्य जमनालाल-जी के साथ किया और उनके बारे मे जाना और समझा एव उस दिन से उनके प्रति एक सम्मानभरी श्रद्धा पैदा हुई। मोतीलालजी प्रचार से दूर रहते थे। वह तो आर्त्त और अत्याचार से पीडित लोगो के नेता थे। उनके सुख-दु ख मे शरीक होने मे तथा उनके प्रति होनेवाले अन्यायो का प्रतिकार करने मे ही उनको सुख मिलता था।

गाधी-युग के पहले राजस्थान मे जिन लोगो ने जागृति का काम किया, उनमे श्री अर्जुनलालजी सेठी, विजयसिंहजी पथिक, बाबा नृसिह-दास, जयनारायणजी व्यास, केशरीसिंहजी बारहठ, चूरू के स्वामी गोपालदासजी आदि लोगो से मिलने और परिचय का मौका मिला था। डरवा के महाराज श्री गोपालसिंहजी का नाम भी सुना था। इन लोगो को लोकमान्य तिलक तथा अन्य उग्र नेताओ से प्रेरणा मिली थी। हो सकता है कि तेजावतजी ने भी इस युग से प्रेरणा प्राप्त की हो, पर तेजावतजी का पथ ऐसा था, जिसमे केवल शूल ही बिछे थे। तेजावतजी ने न फूल के दर्शन किये और न कल्पना की।

कुछ वर्ष पहले वह कलकत्ता आये थे, तब उनका स्वागत करके हमने एक सच्चे देशभक्त के स्वागत के सुख का अनुभव किया था। जब उनके निधन का समाचार पढा तो ऐसा लगा कि एक ऐसा आदमी उठ गया, जिसने देश-भक्ति मे तपते-तपते अपने-आपको गला दिया था और कुछ भी बदले मे प्राप्त करने की इच्छा नही की। न वह एम० एल०

ए०, एम० एल० सी० या एम० पी० बने और न उन्हे कोई राजकीय पद मिला। रहने के लिए घर नही और कोई दूसरा साधन नही। इस स्थिति मे सारी उम्र जवानी से बुढापे तक वह तपते रहे और "सुमन माल जिमि कण्ठ ते, गिरत न जानहि नाग," की भाति चले गये।

५ : जुगलकिशोर बिड़ला

सन् १९११ मे मैं कलकत्ता आया था। १८ मल्लिक स्ट्रीट, काली-गोदाम मे ठहरा और वहा बहुत दिन रहा। उन बातो को आज आधी शताब्दी से अधिक हो गये। उन दिनो काली गोदाम मे बलदेवदास जुगलकिशोर के नाम से आज के बिडला ब्रादर्स की फर्म थी। श्री जुगल-किशोरजी अपनी उस गद्दी का सचालन करते थे और काली-गोदाम मे ही रहते थे। मुझे पहले-पहल वही उनके दर्शन का सौभाग्य मिला। परिचय उस समय नही हो सका, क्योकि उस समय भी वह अपने-आप-मे एक विशेष आदमी थे। उनकी चर्चा रहती थी वहा काली-गोदाम मे तथा समाज मे। उन दिनो वह मारवाडी समाज के बडे व्यापरियो मे नही थे, पर उनके विचार, उदारता, नम्रता, सरलता, सादगी और स्नेहशीलता की चर्चा रहती।

काली-गोदाम मे जो गद्दिया थी, उनके साथ बासा याने खाने-पीने का प्रबन्ध रहता। उस बासे मे भोजन करने का दस से बारह रुपया महीना खर्च लगता। उस समय बिड़लो की गद्दी का जो बासा था वह काली-गोदाम में सबसे अच्छा माना जाता था। बासे मे जीमनेवालो के लिए एक क्यारी होती थी। उसमे जीमते समय उस क्यारी को ग्वाला,[1] जो वहा बरतन माजने आदि का काम करता था, छू नही सकता था। जीमनेवाले को कोई चीज दी जाय तो वह बिना छुए हल्के हाथ से ऊपर से गिरा दी

१. बगाल मे मारवाड़ी-परिवारो के घरेलू नौकर को ग्वाला कहते हैं।

जाती, पर बाबू जुगलकिशोरजी ऐसा न करते। वह उस ग्वाले को न तो अछूत मानते और न उसके साथ इस तरह का वर्ताव करते। वह कटोरी उसके हाथ से थाली मे रखवाते या उसके हाथ से अपने हाथ मे ले लेते। इस बात की चर्चा काली-गोदाम मे हुआ करती कि जुगलकिशोर-जी ग्वाले का परहेज नही करते, यानी उसका छुआ खाते है। बात आज हँसी की-सी लगती है, पर उनके जीवन की झाकियो मे झाके तो उस समय की इस बहुत छोटी-सी बात मे वे विचार नजर आते है, जो आगे जाकर हरिजन-आदोलन या छुआछूत या सवर्ण-अवर्ण के विचारो मे प्रकट हुए।

उस समय तक बगाली समाज मे ब्रह्म-समाज की स्थापना हो चुकी थी और उसका प्रभाव बंगाल मे काफी बढ रहा था। ऐसे ही आर्य समाज के विचारो का भी प्रभाव पजाब तथा उत्तर भारत मे बढ रहा था। श्री जुगलकिशोरजी पर आर्य समाज की समाज-सुधार की बात का प्रभाव पडा था, पर आर्य-समाज की मूर्ति-पूजा-निषेध तथा अन्य बातो का प्रभाव उनपर नही था। उस समय बडा सघर्ष था—आर्य समाज और सनातन धर्म का। श्री जुगलकिशोरजी हर अच्छी बात, अच्छे आदमी, का आदर करते थे।

उदारता और नम्रता की तो वह साक्षात मूर्ति ही थे। मैंने उनके दादाजी की उदारता की बात सुनी है और उनकी तो सुनी भी और देखी भी। हो सकता है, उन्होंने अपने दादाजी, पिताजी से संस्कार लिये हों, पर उनमे एक ऐसी विचित्रता थी देने की कि न देने पर अकुलाहट होती। जिस समय उनके सट्टे मे रुपया आता तो अकुला कर रुपये देते। ऐसे दो-चार उदाहरण तो मेरे सामने हैं कि मागनेवाले ने कल्पना ही नही की कि इतना अधिक मिलेगा। वह चन्दा मागनेवाले से या व्यक्तिगत सहायता चाहनेवाले से पूछते कि कितने से काम चलेगा तो जितना वह बताता वह कहते, इतने से कैसे चलेगा, ज्यादा चाहिए ? यह सब उनके व्यक्तिगत गुण या स्वभाव की बातें हैं। एक लम्बे अर्से तक वह हमारे बीच रहे और अपनी उदारता और सद्भावना से समाज का हित-साधन करते रहे।

बिडला मदिर या और अनेक मदिर या मदिरो का जीर्णोद्धार आदि बाते तो प्राय. सबके सामने है और ये सब चीजे उनकी दानशीलता आदि बातो को प्रकट करती है, पर व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन की छोटी बातो मे अन्तरजीवन मे ही सच्चा जीवन जीता है। उसका अतर-जीवन, जिसको बाहर के लोग प्राय नही जानते या जान नही सकते, वही उसका वास्तविक जीवन है। श्री जुगलकिशोरजी के उस जीवन की थोडी-बहुत झाकी जिनको मिली है वे जानते है कि वे अपने जीवन मे कितने महान् थे। उनके दान का एक बहुत बडा हिस्सा ऐसा भी होता था, जिसको दाहिना हाथ दे तो बाया हाथ न जाने। हजारो आदमियो की आपद-विपद मे उन्होने सहायता की है, जिसको वे ही जानते है। ऐसे अनेक लोग है, जो उनके चले जाने से एक सहारा खो बैठे है।

•

६ : हकीमसाहब

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान मे इधर जो घटनाए घटी और हिन्दू-मुसलमानो ने जिस तरह के पागलपन और अमानुषिकता का परिचय दिया उसके हजारो उदाहरण है। पाकिस्तान के हिन्दुओ पर जो बीती या जिन तकलीफो और विपत्तियो का सामना उन्हे करना पडा, उन्हे या तो हम अखबारो के द्वारा जानते है या वहा से आये हुए लोगो की जबानी या वहा से आई हुई गलत या सही चिट्ठी-पत्री के द्वारा। पर हिन्दुस्तान मे जो-कुछ हुआ यदि उसे हम देखना या समझना चाहते हो तो आसानी से ऐसा कर सकते है, क्योकि वे हमारी आखो के सामने से ही गुजरी है। हम उन्हे देख सकते है, समझ सकते है और अगर सही रास्ते पर चले तो उन्हे रोका भी जा सकता है।

होता नही, हुआ भी नही। यहा तो होड इस बात की लगी थी कि पाकिस्तान मे हिन्दुओ पर जो-कुछ बीती उससे ज्यादा हमे यहा के मुसलमानो पर बितानी है। पाकिस्तान मे अगर एक लाख आदमी बेघर-बार और बेरोजगार हो गये है, तो हिन्दुस्तान मे उसके बदले मे दो लाख मुसलमानो को वैसा ही बना दे, तब तो बहादुरी है।

ऐसी स्थिति मे जमीयत-उल-उलेमा के सेक्रेटरी मौलाना हिफजुर-रहमान साहब का एक तार कलकत्ते की उलेमा की शाखा के मन्त्री के पास आया, जिसमे लिखा था कि ढकुरिया के हकीम साहब बडी मुश्किल मे पड गये है, आप जाकर उनकी खबर ले और उन्हे तसल्ली दे। जमीयत की कलकत्ता-शाखावाले उस मुसीबत मे क्या करे, जबकि वे खुद ही मुसीबत मे थे। उनके आफिस मे दिन-भर फोन-पर-फोन और आदमी आते ही रहते थे और फरियाद करते थे कि अमुक बस्ती मे आग लगी है, हमे बचाइए, अमुक जगह बम पड़ रहे है, हमे बचाइए, अमुक जगह से भागकर पाच हजार मुसलमान अमुक जगह आ गये है और वहा वे दो दिन से भूख के मारे बिलबिला रहे है, उनके साथ बूढे है, औरते है और छोटे-छोटे मासूम बच्चे, खुदा के नाम पर इन सबके लिए जो-कुछ हो सकता हो, जल्द कीजिए, और कुछ न हो, तो फिलहाल खोई-चना ही भेजिए। हजारो आदमी जकरिया स्ट्रीट के उनके दफ्तर के नीचे खडे थे और बराबर आनेवालो का ताता टूटता ही नही था, मानो विपद और आफत का एक विकट तूफान-सा आया हुआ था। जिन लोगो ने इन दृश्यो को देखा है, वे ही उनकी गहराई को जान सकते है। शायद ही कोई कवि या लेखक इनका सही चित्रण कर सके।

जब मैं उलेमा के दफ्तर मे पहुचा तो सेक्रेटरी साहब ने वह तार मुझे दिखाया और कहा, "ये निहायत नेक आदमी है और सारी उम्र काग्रेस की खिदमत मे ही गुजारी । पर आज तो ये भी सिर्फ मुसलमान हैं और पाकिस्तान मे मुसलमानो ने जो बदगुमानी की है, उसका बदला यहा के ऐसे मुसलमानो तक से लिया जा रहा है, इसके लिए आज मुसलमान होना-भर ही काफी है, फिर चाहे उसका पिछला रिकार्ड कैसा भी क्यो न रहा हो, और साहब, रिकार्ड को कौन जानता है।

आप ही बताइए कि हम क्या करें ?

"ऐसे नेक आदमी को बचाना बहुत जरूरी है, पर हमारी ताकत के तो यह बाहर की बात है, उन्हे बचाना तो दूर रहा, अगर वहा जाय तो खुद भी मारे जाय। आज तो किसीको मारने के लिए दाढी और पाजामा ही काफी है।"

मैंने कहा कि यह तार और हकीमसाहब का पता आप मुझे दीजिए। मैं जाऊगा और जो-कुछ होगा, आपसे आकर कह दूगा। वह बोले, "पता तो बस यह तार ही है, रास्ता या मकान का नम्बर हम कोई भी नही जानते। हा, वह उस मुहल्ले के एक मशहूर आदमी जरूर है, शायद इससे पता आसानी से लग सके।"

मैंने तार ले लिया और अपने मित्र महावीरप्रसादजी पोद्दारके पास आया। वह तीन-चार दिन पहले ही भागलपुर से कलकत्ता आये थे। रास्ते मे श्रीरामपुर से बेलूर तक उनके सामने ही पाच मुसलमानो को काट डाला गया था और बीच के लगभग हर स्टेशन पर मुसलमानो की लाशे पडी उन्होने देखी थी। इससे उनको इतना दु ख हुआ कि उन्होंने कलकत्ता पहुचकर इसके प्रायश्चित्त-स्वरूप अनशन कर दिया और भगवान से प्रार्थना की कि वह इस बर्बरता का शीघ्र-से-शीघ्र अन्त करे। मैंने पोद्दारजी से कहा कि भाईसाहब, आप ही एक आदमी मिले है, जो मुसलमानो के दु ख-दर्द को भी आदमी का ही दु ख-दर्द समझते हैं। आज तो सबसे ज्यादा काम करने की जरूरत है। ऐसी हालत मे उपवास करने से क्या होगा! यह कहकर वह तार उन्हे दिखाया और सारा किस्सा भी बताया। वह बोले—"चलो, चले उस आदमी की खोज मे।"

उनको उपवास के समय कही ले जाना मुझे ठीक तो नही लगा, पर उनका उत्साह और भावना खूब तीव्र थे। मैं उन्हे खूब जानता हू, इसलिए कुछ न बोला। एक बार मेरे घर पर उन्होने इक्कीस दिन का उपवास किया था और उस दौरान मे बीस दिन तक बराबर काम करते रहे थे। हम दोनो टट्टुरिया गये और वहा कई लोगो से हकीमसाहब का पता-ठिकाना जानने की कोशिश की, पर कोई फल न निकला। हम

लोग भटकते-भटकते हैरान हो गये। वहा कही किसी मुसलमान का नाम-निशान भी न दीखा और किसी हिन्दू से पूछते तो वह चौकन्ना होकर हमारी ओर देखने लगता और यही हालत दूसरे सुननेवालो की भी होती।

फिरते-फिरते हमे एक भला हिन्दू मिला। उसने कहा, "चलिए, मै बताता हू। पहले तो हम जरा सहमे, पर फिर उसके साथ हो लिये। हम लोग एक जगह गये, जहा एक मैदान मे कुछ झोपडिया बनी दिखाई दी। किनारे पर एक नया साइनबोर्ड लगा था, जिसपर लिखा था—"आदर्श नगर।" जब हम उस आदर्श नगर मे पहुचे, तो वहा के लोगो की शक्लो पर गुस्सा, क्षोभ और घृणा के भाव स्पष्ट दिखाई पड रहे थे। पहले तो हम जरा हिचके, पर फिर वह रास्ता पार किया और एक मकान के सामने आकर खडे हुए। उस भले भाई ने कहा, "यही है हकीमसाहब का मकान।" दरवाजा बन्द था। हमने उसपर आहिस्ता-आहिस्ता दस्तक दी। दरवाजा खुला और एक सज्जन सामने आते हुए बोले, "कहिए, क्या काम है ?"

हम सोच मे पड गये कि क्या काम बताये। फिर पूछा, "क्या यहा हकीमसाहब रहते है ?"

उन्होने कहा, "रहते थे।"

पोद्दारजी ने पूछा "अब कहा चले गये ?"

उन सज्जन ने रूखे स्वर मे कहा, "ढाका।"

हमने सारी स्थिति भाप ली और वहा से सरक गये। इन शरणार्थी भाई ने इस मकान पर दखल कर लिया था और अब कोई इस मकान के बारे मे बात करे, यह वह बर्दाश्त नही कर सकते थे। हमे काफी निराशा हुई कि हकीमसाहब तो चले ही गये, अब क्या पता लग सकता है ! फिर भी सोचा कि अगर कोई मुसलमान सज्जन मिले तो उनसे भी पूछ देखे, पर वहा तो आसपास कही भी किसी मुसलमान की शक्ल दिखाई नही दी। हमने साथ आनेवाले भाई से पूछा कि यहा का मुसलमान मोहल्ला किधर है, शायद वहा कुछ पता लग सके। उन भाई ने कहा, "यही तो है यहा का मुसलमान मुहल्ला, पर सब मुसलमान भाग

जो गये है और उनके खाली मकानो पर शरणार्थियो ने कब्जा जमा लिया है, कुछ दस-पाच घर बचे होगे, तो उनमे रहनेवालो का हौसला ही नही होता कि बाहर आवे ।

पिछली तरफ हमे एक मुसलमान की-सी सूरत नजर आई और हम उसी ओर बढे । पास जाकर हमने उस भाई से पूछा कि क्या हाल-चाल है, तो वह डरा । जब हमने उसे समझाया तो तसल्ली हुई और वह अपनी बाते कहने लगा । हकीमसाहब का घर पास ही था, जो उसने हमे इशारे से बताया । मकान का दरवाजा बन्द था । हमने दस्तक दी तो किवाड खुले और एक सहमी-सी, डरी-सी, घबराई-सी शक्ल हमारे सामने आई, जिसको देखकर थोडी देर के लिए हम भी चकित-से रह गये । बहुत ही जईफ, शरीर पर फटा-सा कुरता और तहमद, मुह मे एक-आध दात, सामने छोटी-सी दाढी, जिसके बाल सफेद होने के बाद जर्द हो चुके थे, झुर्रियो से भरा मुह और झुकी हुई कमर । बडे अदब से उन्होने कहा, "आदाबअर्ज । कहिए, कैसे मेहरबानी की ?"

हमने कहा कि हम हकीमसाहब से मिलने आये है । उन्होंने कहा, "खादिम ही को कहते है । आइए, आइए, तशरीफ रखिये ।"

हम लोग भीतर गये और तार उन्हे दिखाकर सारे हालात बयान किये । वह बागबाग होकर बोले, "आपने बडी तकलीफ उठाई इस नाचीज के लिए । मैं तो आपका शुक्रिया अदा करने लायक भी नहीं । मैंने ही घबराकर मौलाना को तार कर दिया था । वह पुराने दोस्त है ।"

बातो के सिलसिले मे उन्होने स्वदेशी युग की घटनाओं का जिक्र किया और बडे गद्‌गद् स्वर मे कहा, "वे भी दिन थे जब हमने राखी बाधी थी और कहा था, भाई-भाई भेद नाई ।" कई अन्य बाते बताने के बाद उन्होने कहा, "आपने शायद मौलवी लियाकत हुसैन साहब का नाम सुना होगा, मै उन्हीका शागिर्द हूं । उन्होने ही मुफलीसी न जाने कितने नौजवानो को उन दिनो स्वदेशी की दीक्षा दी थी, पर दुनिया अपने मतलब की बातें याद रखती है, बाकी भुला देती है । आज मौलवी साहब का नाम लोग भूल गये है, उनकी सेवा और कुर्बानी भी भूल गये

है, पर वह सच्चे देशभक्त थे और अपने मादरे-वतन को आजाद देखने के लिए किसीसे कम ख्वाहिशमन्द नही थे। अग्रेजो के तो वह पक्के दुश्मन ही थे और इसीलिए अग्रेज सरकार उन्हे बार-बार जेल मे डाल देती थी।"

मुझे भी मौलवी लियाकत हुसेन साहब की याद हो आई। जब लोकमान्य तिलक जेल मे थे और देश लाल-बाल-पाल के नामो से प्रभावित था, तभी मैंने मौलवीसाहब का नाम सुना था और उनको देखने की इच्छा भी होती थी। पर मौलवीसाहब के नाम के साथ ही एक भय लगा हुआ था कि मौलवीसाहब से जो कोई मिलेगा तो खुफिया पुलिसवाले उसका नाम लिख लेगे। उन दिनो खुफिया पुलिस का भय यमराज से भी ज्यादा था। बगाल के जो आतकवादी एक बार भी इलीशम रोडवाले हेडक्वार्टर मे जा आये है वही उन दिनो की खुफिया पुलिस के कारनामो और सदिग्ध व्यक्तियो को दी जानेवाली यातनाओ का कुछ परिचय दे सकते हैं। इसके बावजूद मौलवीसाहब से मिलने को तो जी ललचाता ही रहा। १९१७ मे यह सुयोग मिल गया। उस वर्ष काग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता मे हुआ था और श्रीमती एनी बेसेन्ट ने सभापति का आसन सुशोभित किया था। लोकमान्य तिलक और कर्मवीर गाधी भी इस अधिवेशन मे सम्मिलित हुए थे। कई मित्रो के साथ मैं भी काग्रेस का स्वयसेवक बना। आगन्तुको मे हमने एक ऐसे मुसलमान सज्जन को देखा, जो पाजामा और हरी कमीज पहने थे और जिन्हे लोगो ने बडे आदर से मच पर बैठाया। मैंने जब पूछा तो पता लगा कि यही मौलवी लियाकत हुसेनसाहब है। फिर तो मेरी खुशी का कोई ठिकाना नही रहा। एक साथ ही दो मुरादे पूरी हुईं—लोकमान्य तिलक और मौलवीसाहब के दर्शनो की। इसी अवसर पर मौलवीसाहब से थोडा परिचय भी हो गया और उनसे दो-चार बार मिलने और बाते करने का मौका भी मिला। जो कोई भी मौलवीसाहब के सम्पर्क मे आता, वही अग्रेजो का कट्टर दुश्मन बन जाता। अग्रेजी शासन और शोषण की वह ऐसी-ऐसी बाते बताते कि सुननेवाला उनसे प्रभावित हुए बिना न रहता।

हमारे हकीमसाहव ऐसे ही मौलवीसाहव के शागिर्द है। पर आज तो वह सिर्फ एक मुसलमान है, इसलिए हिन्दुस्तान मे चैन-आराम से कैसे और क्यो रहे ? पाकिस्तान के लोगो ने हमारे हजारो-लाखो भाइयो को मुसीवत मे डाल दिया है, फिर हम इनका वदला क्यो न ले ? पर वदले से ज्यादा तो यह एक आर्थिक सवाल है। जब लाखो हिन्दू पाकिस्तान से यहा आ रहे है, तव अगर वदले मे मुसलमानो को नही निकाला जायगा, तो आनेवाले लोगो को हम कहा रखेगे ? और फिर विना वदले के हमारे देश का आर्थिक ढाचा जो गडवडा जायगा ! देश के आर्थिक ढाचे की वात सोचनेवालो की निगाह मे वेचारे हकीमसाहव के फटे कुर्ते, सफेद दाढी और चालीस वर्ष की काग्रेस या देश की खिदमत का क्या मूल्य और महत्व हो सकता है ?

हकीमसाहव ने हमसे पूछा, "आप क्या राय देते है ? हम यहा रहे या क्या करे ? हम अपना घर और वतन छोड़ना नही चाहते, पर वीवी-वच्चे सव काप रहे है यहा के हालात देख-सुनकर। आसपास के लोग चले गये है, जो दस-पाच पर वचे है, उनके लोग भी चले जाना चाह रहे है।"

हम लोगों ने कहा, "हकीमसाहव, पागलपन की जो हवा इस समय वह रही है, उसे देखते हुए कोई भी यह नही कहेगा कि आप यहा रहे और आप पर कोई आच नही आयगी।" हकीमसाहव वीच मे ही वोल उठे, "यहा के जो हिन्दू भाई है उनसे हमे कोई डर नही है। मैं आज भी यहां की काग्रेस का वाइस-प्रेसिडेन्ट हूं। हमारे मत्री मुझे यही रहने के लिए कह रहे है, पर वे भी आनेवाले शरणार्थियो से डर रहे हैं। हमारे एक भले हिन्दू साथी ने कहा कि अगर हमारा वस चले तो हम हकीमसाहव को ही न जाने दे। पर इन शरणार्थियो से डर लग रहा है कि कही ये हमारे घरो पर ही हमला न कर दे। अगर हम किसी मुसलमान को वचाने की कोशिश करे, तो हमारे भाई ही हमारे दुश्मन हो जायगे।"

हकीमजी जिस हालत मे थे, उसमे न मालूम दूसरे कितने और व्यक्ति भी होंगे और ऐसा ही पाकिस्तान मे भी होगा। पर आज दोनों

ही जगह कोई आदमी किसीको बचाना और रखना चाहे तो भी रख नही सकता। अन्त मे हमने हकीमसाहब से कहा कि अगर आप यहा रहकर मरने के लिए तैयार हो तभी आपको यहा रहना चाहिए। हो सकता है कि आप जैसे पाक लोगो की कुर्बानी से ही इन पागलो और अन्धो की आख खुले। आपको यहा की हिन्दू और मुस्लिम जनता प्यार और आदर की दृष्टि से देखती है। अगर आपको भी साम्प्रदायिक दीवाने मार डाले तो, दूसरे ऐसे लोग भी होगे जो इस जहर से मुक्त हो। उनको कुछ करने का मौका तो मिलेगा ही। आप तो ७५ वर्ष से ज्यादा के हो ही चुके है। आपका जीवन भी कुर्बानी का रहा है। अगर देश आपसे यह आखिरी कुर्बानी चाहता है, तो यह भी दीजिए।

उन्होने कहा, "आप बजा फर्माते है, मैं यही रहूगा। यहा जनमा हू, यही मर भी जाना है। मेरे लिए मेरा यह वतन ही जन्नत है। दूसरी जगह जाना तो जीते-जी मरना है। और फिर बीवी-बच्चो और दवाइयो और सारे सामान को लेकर जाऊगा भी कहा ?"

पोद्दारजी की तरफ मुखातिब होकर मैंने कहा, "इन्होने हावडा मे अपनी आखो से जो-कुछ देखा, उससे इनके दिल को ऐसा सदमा पहुचा कि ये पिछले चार दिनो से फाका कर रहे है और खुदा से दुआ माग रहे है कि लोगो की अक्ल ठिकाने आये। गाधीजी ने नोआखाली की प्रार्थना मे नई धुन शुरू की थी, वह तो आप जानते ही है · ईश्वर-अल्लाह तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान। वही धुन ये अपने मन मे दुहरा रहे है।"

यह सब सुनकर हकीमसाहब गद्गद् हो गये और उन्हे गले लगा लिया। बोलने की कोशिश करने पर भी वह कुछ न बोल सके और उनकी आखो से झरझर आसू बहने लगे। ये पवित्र बूदें कैसी थी और हमे क्या कह रही थी, उसे कौन सुने और कौन समझे ? सभलने के बाद हकीमसाहब के मुह से निकला, "या अल्लाह, तू भी खूब है ! क्या-क्या कुदरत है तेरी।"

हम लोगो ने कहा, "हकीमसाहब, हम अपना पता-ठिकाना और टेलीफोन-नम्बर आपके पास छोड़े जाते हैं। कोई बात हो, तो किसी

तरह भी हमे खबर दीजिएगा। हमसे जो-कुछ बन पडेगा उसमे कमी नही रखेगे। अच्छा, तो अब हमे इजाजत दीजिए। फिर मिलेंगे।"

उन्होने कहा, "बडी तसल्ली मिली आपके यहा आने से। अगर मैं मरा तो भी बच गया, और बचा, तो भी बच गया।"

विदा होते समय दोनो हाथ जोडकर मैंने कहा, "खुदा हाफिज!" उन्होने भी दोनो हाथ जोडकर उसी-तरह कहा, "खुदा हाफिज!"

कुछ अविस्मरणीय प्रसंग

१ : दो लड़कियां

सन् १६३४ की बात है। हम लोग जमनालालजी के पास वर्धा गये हुए थे। पूज्य बापूजी सत्याग्रह-आश्रम मे रह रहे थे। अबतक मगनवाडी और सेवाग्राम की स्थापना नही हुई थी। बापूजी के यहा रहने से जमनालालजी का अतिथिगृह मेहमानो से भरा रहता। देश के हर क्षेत्र के लोग बापूजी के पास अपने-अपने काम से आते ही रहते। इस तरह देश के विशिष्ट लोगो और कार्यकर्त्ताओ से मिलने का मौका मिलता तथा देश की नाना तरह की समस्याओ से जानकारी होती। फिर जमनालालजी के स्नेहशील स्वभाव का भी आकर्षण था। इसलिए मैं तथा मेरे परिवार के लोग वर्ष मे एक-आध महीने वहा जाकर रहते थे। एक बार की एक घटना का वर्णन मैं करना चाहता हू।

सुबह चार बजे हम लोग प्रार्थना करते। कुछ चुने हुए श्लोक और नामोच्चारण के बाद एक भजन गाया जाता। एक दिन भजन के समय जमनालालजी ने किसीको सम्बोधन करके कहा कि रामेश्वरी, तुम एक भजन गाओ न, तो उस बहन ने मीरा का एक भजन गाया। शायद भजन की टेक थी—सुनी री मैंने हरि आवन की आवाज। इस बहन का गला निहायत सुन्दर था और गाने का ज्ञान भी उन्हे अच्छा था। इसके साथ गानेवाली की तन्मयता ने एक समा बाध दिया और उस दिन की प्रार्थना आजतक स्मरण है। प्रार्थना समाप्त होने पर सब

कोई अपने-अपने काम मे लग गये। मेरे मन मे रहा कि यह वहन कौन है और यहा किस काम से आई है ? मैंने जमनालालजी से उन बहन का परिचय पूछा। वह बोले कि इनसे तो मै तुम्हारा परिचय करानेवाला ही था। ये कल ही आई हैं। इनकी मा और दो-तीन वहनें भी आई हैं। उन सवसे भी तुम परिचय करो। इनका नाम रामेश्वरी गोयल है। एम० ए० हैं, लेखिका हे, कवयित्री है और गाना तो अभी सुना ही है। इलाहावाद मे एक स्कूल की प्रधानाध्यापिका हैं। और वाते तुम स्वय कर सकते हो। मेरा नाम और परिचय भी उन्होने वता दिया। सव सुनने के वाद मेरी उत्सुकता वढी, उनसे वात करने की। पर किसी अनजान महिला से वाते करने मे स्वाभाविक सकोच तो होता ही है। उन वहन ने कहा कि आपका नाम मैं जानती हू। खैर, दो एक दिन मे ही हम लोगो की अच्छी घनिष्ठता हो गई। रामेश्वरीवहन की माताजी तथा वहनो से भी अच्छा परिचय हो गया।

श्री रामेश्वरीदेवी से सवधित और वातो को छोडकर मैं एक खास वात, जो इस लेख के लिखने का उद्देश्य है, लिख रहा हूं। रामेश्वरीजी की मा उनको लेकर यहा इसलिए आई थी कि सेठजी (जमनालालजी) से परिचय हो जाने पर किसी योग्य आदमी से उनका विवाह कराने में वह मदद करें। जमनालालजी के पास नाना तरह की समस्याए लेकर लोग आते थे और कुछको वापूजी भी भेजते थे। उन समस्याओ मे इन विवाह-शादियो की समस्याओ का भी काफी हिस्सा था। इस वारे मे जमनालालजी के जीवन के वारे मे लिखना हो, तो उनके जीवन के इस विषय को छोडा नही जा सकता। एक व्यग्यात्मक वात तो कह ही दू। प्रभावतीवहन (श्री जयप्रकाशजी की पत्नी) उन दिनो ज्यादातर वापूजी के पास रहती थी। एक दिन वापूजी से वातें करके हम लोग वहां से उठे, तो प्रभावतीवहन साथ-साथ आई और जमनालालजी से कहने लगीं कि काकाजी, अब आपको जमनालालजी न कहकर शादीलालजी कहना चाहिए; क्योंकि आजकल आप वहुत शादिया कराते हैं। शायद उस समय सोफिया खान की शादी की वावत वापूजी में वात चल रही थी, जो वम्वई की एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्री

(उस समय की सोफिया सोमजी) थी और जिनकी शादी जमनालालजी ने ही डा० खान के बडे लडके सादुल्ला खान से कराई थी। इस सम्बन्ध को बापूजी ने बहुत पसन्द किया था। और भी लोगो ने इस सम्बन्ध के लिए जमनालालजी को बहुत शाबाशी दी थी। यह सब लम्बी बातें हैं।

रामेश्वरीजी से जमनालालजी ने विवाह के बारे मे बाते की तथा जानना चाहा कि कैसे क्या वह सोच रही है ? इसपर उन्होने एक ही शब्द मे कह दिया कि मैं अपनी मा के कहने से विवाह कर रही हू, इसलिए इस बारे मे मुझे कुछ कहना या सोचना नही है। जिसको मेरी मा पसन्द करे, वह मुझे पसन्द है, क्योकि मैं मा को सन्तुष्ट करना चाहती हू। मेरी मा का मुझपर बहुत उपकार है। उसने बहुत तकलीफ सहकर, बडी कठिनाइयो का मुकाबला करके मुझे लिखाया-पढाया तथा आदमी बनाया है। अब मा मेरा विवाह करना चाहती है, तो मैं उसकी आज्ञा का पालन कर रही हूं। आज्ञा-पालन मे अपना सवाल नही रहता। इसलिए मुझे कुछ नही कहना है, कुछ नही सोचना है।

बाते तो बहुत हुईं, पर उन्होने तो एक ही बात कही कि जिसमे मेरी मा राजी हो, वही मुझे करना है। इन सब बातो का कम-ज्यादा रूप मे वहा हम सबको पता लग ही गया। रामेश्वरीजी के हमउम्र लोगो मे से, जो जमनालालजी के कुटुम्ब के थे, बहुत-से व्यग्य भी करने लगे। श्रीमती जानकीबहन (जमनालालजी की पत्नी) ने मुझसे कहा कि यह लडकी तो खूब है! इतनी पढी-लिखी, सब बातो को जाननेवाली, कहती है कि मुझे अपने विवाह के बारे मे कुछ नही सोचना है, जो मेरी मा करे, वही मुझे मजूर है! मैंने कहा कि जानकीबहन, मुझसे उसकी बहुत बाते होती है। उसकी विवाह करने की ही इच्छा नही है। वह तो समाज-सेवा, देश-सेवा करना चाहती है, पर वह यह मानती है कि मुझे अपनी मा को सन्तोष कराना है। उसकी इच्छा मे अपनी इच्छा का समर्पण करना है। इसलिए वह कहती है कि मा जो करे, जो सोचे, उसमे मैं उज्र कैसे कर सकती हू ? जानकीबहन ने कहा कि अपनी ओम् तो बहुत बाते करनेवाली है ही। उसने रामेश्वरी को बहुत तग किया, तो उसने यहातक कह डाला कि मा मुझे किसी पत्थर के गले

मे भी बाध दे तो मुझे कोई उज्र नही होगा। आज के जमाने मे इतनी पढी-लिखी, इतनी स्वतन्त्र रहनेवाली और स्कूल चलानेवाली लड़की इस तरह सोचे यह तो आश्चर्य ही है।

रामेश्वरीदेवी का विवाह हुआ और उसके कुछ ही दिनो वाद उनकी मृत्यु हो गई। उन्होने अपनी मा की इच्छा को पूरा किया, पर उनकी अपनी इच्छा उनके साथ ही चली गई।

•

एक दूसरी लडकी का चित्र देखिए, जो इसके बिलकुल विपरीत है। एक माता-पिता ने अपनी लडकी को जमनालालजी के पास भेजा कि इस लडकी को समझाइए कि यह क्या करने जा रही है। यह जिस लडके से विवाह करना चाहती है, उसे हम लोग पसन्द नही करते। वह हमारे धर्म का नही, हमारी जाति का नही और हमारी बराबरी का नही। इस लडके के साथ यदि इसका सम्बन्ध होगा, तो हम अपनी जाति मे, समाज मे, मुह दिखाने लायक नही रह जायगे। यदि आप इस लडकी को समझाकर इस लडके से इसका मन हटा सके, तो हमारा और इस लडकी का बडा उपकार होगा। आप हमारे पुराने मित्र है और देशसेवक है। हमे उम्मीद है कि लडकी आपकी बात मान लेगी।

लडकी वर्धा आई। हम लोग भी वर्धा मे ही थे। जमनालालजी ने उस लडकी से मेरा परिचय कराया और उसकी सब बाते कही। बम्बई के उपनगर सान्ताक्रूज के आनन्दीलाल पोद्दार हाईस्कूल मे लडकी पढती थी। उस स्कूल मे सहशिक्षा है। एक लडके से लडकी की विवाह के बारे मे बात हो गई और दोनो ने निश्चय कर लिया कि यदि विवाह करेंगे तो हम दोनो करेंगे, नही तो आजीवन क्वारे रहेंगे। लडकी जैनधर्मावलम्बी है, लडका वैष्णव। लडकी के माता-पिता धनी है, लडका साधारण स्थिति का। लडकी वैश्य है, लडका शायद और जाति का। लडकी ने आई० ए० मे पढना छोड दिया, लडका एम० ए० है। लडकी के माता-पिता बिलकुल नाराज है, इस लडके से विवाह करने में। लडकी किसी तरह राजी नही होती। वह कहती है कि मैं

तो इसी लडके से विवाह् करूगी ।

जमनालालजी ने लडकी से बाते की और कहा कि तुम्हे अपने माता-पिता की वात माननी चाहिए । वे जो-कुछ करेगे, तुम्हारे भले के लिए ही करेगे । फिर वह लडका तो तुम्हारे धर्म और जाति का भी नही है तथा गरीब भी है । तुमने धनी घर मे जन्म लिया है । तुम बहुत लाड-प्यार से पाली-पोसी गई हो । तुम्हे धनी घर का लडका मिल सकता है, जिसके साथ तुम आराम से रह सकोगी, आदि-आदि बहुत-सी बाते उन्होने लडकी को समझाई । लडकी चुप रही और उसकी आकृति से प्रकट हो रहा था कि वह जमनालालजी की बातो से बहुत दुखी हो रही है। जमनालालजी ने कहा कि मेरी बातो पर विचार करो । उस लडके से तुम्हारा प्रेम है, पर उसके घर मे जाकर तुम्हे न रहने को वगला मिलेगा, न चढने के लिए मोटर मिलेगी, न पहनने को अच्छे कपडे और जेवर भी नही मिलेगे । काम भी सारा हाथ से ही करना होगा। इससे तुम्हे तकलीफ होगी। आज तुम्हे इनसब बातो का प्रत्यक्ष अनुभव नही है । हो सकता है, वस्तुस्थिति का सामना करना पडे तो तुम अपने मन मे निराश और दुखी होओ । फिर तुम्हारा सम्बन्ध मधुर नही रह सकता, जिसकी आज तुम कल्पना कर रही हो । लडकी चुप-चाप जमीन कुरेदती सब सुनती रही । जमनालालजी ने फिर कहा कि ये सब बाते मै तुम्हारे पिता की तरफ से नही कह रहा हू, अपनी तरफ से कह रहा हू और तुम्हारे लिए कह रहा हूं ।

अब लडकी का मौन भग हुआ । उसने कहा, "ताऊजी, आपने मुझे बचपन से देखा है । मै समझने लगी तबसे आप पर श्रद्धा करती आ रही हू । आप क्या कह रहे है, मैं समझ नही पाती । आप कहते कि लडका मूर्ख है, पढा-लिखा नही है, स्वस्थ नही है या चरित्र का अच्छा नही है, तो मै सोचती और आपकी आज्ञा से तथा माता-पिता की आज्ञा से ही चलती । पर आप लोग तो कहते है, वह तुम्हारे धर्म का नही है, तुम्हारी जाति का नही है, गरीब है । ताऊजी, इसकी क्या गारटी है कि अन्य धनी लडके के साथ आप लोग मेरा विवाह कर देगे, तो वह बराबर धनी ही रहेगा और यह लडका सदा गरीब ही

रहेगा। फिर यह भी सोचने की बात है कि बहुत धन से धनी का क्या लाभ हो रहा है ? धनी जिस विलास का, प्रमाद का जीवन जीता है, वह तो मेरी निगाह मे समाज के लिए घातक ही है। यदि मोटर और बगले की चाह होती तो मैं ऐसे लडके को पसन्द ही क्यो करती ? मैं तो मानती हूं कि आदमी की साधारण जरूरत पूरी हो जाय, तो उसे समाज मे विषमता क्यो फैलानी चाहिए। एक तरफ बहुत-सा ढेर लगेगा, तो दूसरी तरफ गड्ढे का होना स्वाभाविक है। गड्ढे और ढेर का रास्ता कोई अच्छा रास्ता नही। इस रास्ते चलने मे चलनेवाले को कोई आराम या सुख नही मिलता। समतल रास्ते पर ही चलने मे सुख मिलता है। ताऊजी, मुझे माफ करे, मेरी धृष्टता बहुत बढ गई। मुझे आपको ये सब बाते नही कहनी चाहिए थी। मैं आपसे यह प्रार्थना करती हू कि आप पिताजी को समझा दें। मुझे आपका और उनका आशीर्वाद चाहिए।"

जमनालालजी ने कहा, "तुम्हारी बाते मुझे अच्छी लगी। मैं तो तुम्हारे मन की हालत जानना चाहता था। तुम्हारी दृढता का पता लगाये बिना मैं तुम्हारे पिता को क्या राय देता ?"

उन्होने लडकी के पिता को लिख दिया कि मैंने सुलोचना से बाते की और उसको समझाने-बुझाने की चेष्टा भी की। मेरी सलाह है कि लडकी जिस लडके से विवाह करना चाहती है, उसीके साथ विवाह करने मे भलाई है। हमे यह सोचना चाहिए कि हम लडकियो को स्कूल-कालेजो मे पढायेंगे और बड़ उम्र मे उनकी शादी करेंगे तो फिर वे बिलकुल हमारी ही इच्छा से शादी करे, यह न तो सम्भव है और न उचित ही।

लडकी बम्बई चली गई। माता-पिता ने लाचार होकर लडकी की इच्छानुसार विवाह करना मंजूर किया। पर लडकी से उन्होंने कहा कि हम तुम्हें एक पैसा भी नहीं देंगे और विवाह के बाद तुम्हारा हम लोगों से कोई सम्बन्ध नही रहेगा। तुम इस घर मे बिलकुल आ भी नही सकोगी। लडकी ने विनय के साथ कहा कि आपकी पहली बात तो बिलकुल सही है। जब मैं आपकी आज्ञा नहीं मान रही हूं, तो

आपसे पैसा या किसी तरह की सहूलियत कैसे चाह सकती हू ? पर आपसे मेरा सम्वन्ध कैसे छूट सकता है ? मैं आपके घर मे जन्मी हूं। आपके रक्त-मास से बनी हू। आप सबको मैं कैसे भूल सकती हू ? आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं घर मे आकर आपके दर्शन कर सकू, मा और भाई-बहनो से मिल सकू। पिताजी, मैंने अपनी जान मे कोई अन्याय नही किया है। मैं किसी लोभ और प्रलोभन की इच्छा से यह नही कह रही हू। क्या इसके लिए आप मुझे क्षमा नही करेंगे ? क्या आप मेरा यह अधिकार भी छीन लेंगे कि मै आपको तथा घर के और लोगो को देख भी न सकू ? पर पिता का क्रोध शान्त नही हुआ। विवाह हो गया। पिता ने सख्त मनाही कर दी कि सुलोचना अव से घर मे न आने पावे।

लडकी वम्वई के उपनगर दादर मे दो कमरो का एक छोटा-सा फ्लैट लेकर रहने लगी। उसका पति लिखा-पढा, स्वस्थ, मेहनती और ईमानदार था। इसलिए तुरन्त उसको काम मिल गया और पति-पत्नी दोनो आनन्द से रहने लगे।

ए० आई० सी० सी० की मीटिंग मे शामिल होने के लिए मैं वम्वई गया। वहा देखा कि सुलोचना देशसेविका वनी केसरिया साडी और हरा व्लाउज पहने काम कर रही है। वहुत ही खुश, स्वस्थ, प्रसन्न दिखाई पडती थी वह। वडी खुशी हुई उसे देखकर। उससे मिलने की, वाते करने की इच्छा का होना तो स्वाभाविक ही था। पहला प्रश्न मैंने उससे यह किया कि पिताजी के दिल को तुम जीत सकी कि नही ? उसने कहा कि जीत तो सकी, पर वहुत तपश्चर्या करनी पडी उनको राजी करने के लिए। सारी वाते बताने के लिए कहने पर उसने घर आने का निमन्त्रण दिया और वही पर वाते करना तय किया।

दूसरे दिन शाम को मीटिंग खत्म होने पर मै उसके साथ ही उसके घर गया। छोटा-सा घर था, पर बहुत साफ-सुथरा, सुन्दर, व्यवस्थित मालूम हो रहा था। उसके पति भी आ गये। उनसे मिलकर वडी खुशी हुई। थोडी देर की वातचीत से ही वह एक अच्छे विचार के युवक हैं, यह मालूम होने लगा। यह भी पता लगा कि दम्पति वडे प्रेम

से रहते है तथा अपनी सामाजिक और सार्वजनिक जिम्मेदारियों का ज्ञान रखते है। सुलोचना भगिनी-समाज की मन्त्रिणी है। ए० आई० सी० सी० की मीटिग के लिए भगिनी-समाज से बीस देशसेविकाए काम करने के लिए जाती हैं, आदि-आदि बाते भी हुई। पर मेरी इच्छा सुलोचना के पिताजी के समाचार जानने की ज्यादा थी।

सुलोचना ने बताया कि मैं मा और भाइयो से मिलती थी। वे भी कभी-कभी मेरे पास आ जाया करते थे। पर पिताजी के पास जाने और उनसे मिलने की मेरी हिम्मत नही होती थी। मा से मुझे मालूम होता था कि पिताजी का क्रोध अभी शान्त नही हुआ। मा पहले तो नाराज थी, पर बाद मे आहिस्ता-आहिस्ता राजी हो गई। भैया तो मेरे विचारो के ही थे, पर वह पिताजी को कुछ कह नही सकते थे। पिताजी की नाराजगी का असर हमारे सारे कामो पर रहता था। हम लोग अपने-आपमे सुखी है, आप देख ही रहे है। पर पिताजी को राजी न कर सकने की वेदना मेरे दिल मे बनी रहती थी। अचानक वह बीमार पडे और अपने जुहू के बगले पर जाकर रहने लगे। जब यह समाचार मिला तो मुझे बडी चिन्ता हुई और मैं सोचने लगी कि ऐसी हालत मे भी, जब वह बीमार हो तब भी, मुझे उनके क्रोध या नाराजगी के डर से उनके पास नही जाना चाहिए? मैंने तय किया कि चाहे जो हो, मैं उनके पास जाऊगी और उनकी सेवा करूगी। पिताजी मेरा यह अधिकार नही छीन सकते कि मैं बीमारी मे उनकी सेवा भी न कर सकू। मै जुहू गई और पिताजी के पैरो से चिपट गई। मै बोल तो नही सकी, पर मेरे लाख कोशिश करने पर भी मेरे आसू नही रुक सके। पिताजी भी चुप रहे। कुछ देर मे मेरे दुख का आवेग कम हुआ, तो मैंने कहा, "पिताजी, मुझे माफ कर दीजिए।" उनका भी गला भर आया और उन्होने मेरे सिर पर हाथ रखा। न मालूम पिताजी ने कितनी बार मेरे सिर पर हाथ रखा था, कितने प्यार से, कितने दुलार से उन्होने मुझे पुचकारा था, पर सच कहती हू, पिताजी के आज के सिर पर हाथ रखने मे जिस सुख, जिस शान्ति और जिस प्यार का अनुभव हुआ वैसा पहले कभी नही हुआ था। मा भी

पास ही थी। उनकी आखो मे भी आसू थे। भैया भी आ गये। भाभी भी आ गई। मेरे सारे परिवार के लोग आज करीब दो वर्ष के बाद इस तरह मिले। इसकी खुशी का वर्णन मै आपसे कर नही सकती। उस दृश्य को याद करने मे, आपसे कहने मे जो खुशी हो रही है उसका तो आप स्वय अनुभव करते होगे। मैने इनको फोन से खबर की, तो ये भी बहुत खुश हुए। पिताजी तीन-चार महीने बीमार रहे। मैं बराबर उनके पलग से लगी रही। रात मे, दिन मे, बराबर उनकी सेवा करती रही। मै भगवान से प्रार्थना करती थी कि मैंने पिताजी की आत्मा को जो कष्ट दिया है उसका प्रायश्चित्त मैं अपनी सेवा द्वारा कर सकू। इन तीन-चार महीनो मे पिताजी से काफी बाते करने का मौका मिला। वह विचारो से तो कम-ज्यादा रूप मे हम लोगो के विचारो के कायल थे, पर उनमे वह साहस नही था, जो एक युवक मे, एक युवती मे, होता है। यह स्वाभाविक भी है। जब पिताजी अच्छे होकर बम्बई जाने-आने लगे, तब मैं घर आई। आज हम लोगो का पिताजी के साथ मधुर सम्बन्ध है। अब पिताजी के विचारो मे काफी परिवर्तन भी हो गया है और वह मुझे पहले से भी ज्यादा प्यार करते है।

सचमुच आज मुझे भी बडी खुशी हो रही है। सुलोचना के यहा से लौटते समय मैं रास्ते मे सोच रहा था कि सच्चाई एक ऐसी चीज है, जो अपने-आप प्रकट होती है। सुलोचना ने अपनी सच्चाई से, अपने त्याग से, पिता का दिल जीता है। आज जो युवक और युवती समाज मे क्रान्ति करना चाहते है, उनके लिए सुलोचना की कहानी एक अच्छा उदाहरण है, जिसकी आज निहायत जरूरत है। आज के युवक यह जात-पात के, धर्म के और रूढि के बन्धन मान नही सकते, मानना चाहिए भी नही, पर उनको अपनी विनय, अपना शील नही छोडना है। सिद्धान्तो की रक्षा के लिए हमे सब-कुछ सहना होगा। हमारे कष्ट, हमारी वेदना, हमारा त्याग, हमारे कार्यो मे बोलना चाहिए। हमे किसी भी हालत मे समर्पण नही करना है, उद्दण्ड भी नही होना है। यह सोचते-सोचते मै अपने-आप मे खो-सा गया। सुलोचना सुखी रहे, यह प्रार्थना है।

२ : निर्मला की मां

हमारे विद्यालय मे महिलाम्रो की सभा थी। अनेक महिलाए आई थी सभा मे। यह सभा शायद शारदा कानून का समर्थन करने के लिए उसके समर्थको ने आयोजित की थी। सभा समाप्त होने पर एक वहन मुझसे मिलने आई—निहायत सुन्दर, उम्र लगभग २५ की, गौर वर्ण, पुष्ट शरीर, हँसीभरा मुख। मैंने उसको नमस्कार किया और पूछा, "कहो, वहन ?"

वह वोली, "मेरी लडकी आपके स्कूल मे पढती है।"

मैंने पूछा, "क्या नाम है ?"

"निर्मला।"

"आप निर्मला की माताजी हैं ?"

"जीहा।"

"निर्मला तो वहुत अच्छी लडकी है।"

"मैंने सोचा, यहा आई हूं तो आपसे मिलती चलू। निर्मला आपके वारे मे कहा करती है कि हमारे मत्री हमे वहुत वातें वताया करते है।"

उन दिनो हिन्दी भापा भापी लडकिया पाचवे दर्जे से ज्यादा नही पढा करती थी। मैं कोशिश किया करता था कि लडकियो के अभिभावक अपनी लडकियो को ज्यादा पढायें। इसीके अनुसार मैंने उस वहन से भी जव यह कहा कि आप निर्मला को ज्यादा दिन तक पढाएयेगा तो उसके चेहरे पर मैंने जो भाव पढे, वे मुझे आज भी याद हैं।

उसने कहा, "देखिये।"

मैंने कहा, "देखिये नही, उसको हम स्कूल नही छोडने देंगे।"

"अच्छी वात है, यह आपकी वडी कृपा है।" कहकर वह चली गई।

दूसरे दिन निर्मला से मैंने कहा, "कल तुम्हारी मा मिली थी। मैंने उनसे कह दिया है कि वह तुम्हें खूब पढावें।"

निर्मला ने कहा, "मा ने मुझे बताया था, मन्त्रीजी।"

निर्मला सुन्दर मा की सुन्दर लडकी थी। वडे अच्छे स्वभाव की, क्लास मे तेज, मिलनसार और स्कूल के सारे कामो मे उत्साह से भाग लिया करती थी, इसलिए वह हमारी विशेप प्यारी लडकियो मे से थी। जव वह पाचवी से छठी श्रेणी मे गई तो उसमे पहलेवाली स्फूर्ति नही दिखाई दी। मैंने कई वार उससे पूछा, पर उसने कुछ नही वताया। अन्त मैं मैंने उससे कहा कि तुम अपनी मा से कहना, एक वार वह मुझसे मिल ले। पर निर्मला की मा मुझसे मिलने नही आई। दो-एक दिन वाद मैंने निर्मला से पूछा, "तुम्हारी मा आई नही, क्या तुमने उनसे कहा नही था ?"

"कहा तो था, मन्त्रीजी।"

"तो फिर क्यो नही आई ? पहले तो वह स्वय मुझसे मिला करती थी।"

निर्मला ने कोई उत्तर नही दिया। मैंने कुछ ज्यादा पूछना-कहना ठीक नही समझा।

लेकिन निर्मला की मा तो आई नही और वह दिन-पर-दिन कमजोर, सुस्त और ढीली दिखाई देने लगी। उसका फूल-सा मुह कुम्हलाया-कुम्हलाया रहने लगा। दो-एक बार फिर पूछने पर भी उसने कुछ नही वतलाया। अन्त मे एक दिन मै निर्मला के साथ उसके घर गया। वह वडी डरती-डरती मुझे अपने घर ले जा रही थी। मुझे एक जगह खडा करके उसने कमरे मे जाकर मा से कहा कि मन्त्रीजी आये हैं। यह सुनकर वह वाहर आई और नमस्कार करके मुझे भीतर चलने के लिए कहा। मैं उनके चेहरे की ओर आश्चर्य से देख रहा था। वह बोली, "आपने क्यो तकलीफ की ? निर्मला ने तो कहा ही था कि आपने मुझे वुलाया है।"

मैंने बीच ही मे रोककर कहा, "यह मैं क्या देख रहा हू, आप इतनी कमजोर कैसे हो गई ?"

एक कुर्सी पर बैठने का इशारा करते हुए उन्होने भर्राई हुई आवाज़ मे कहा, "मन्त्रीजी, हमारा भाग्य ही ऐसा है।" इसके वाद तो वह

सिसकियां भरकर रोने लगीं। मैं कुछ समझ तो न सका, पर उनकी हालत से मेरा भी दुखित होना स्वाभाविक ही था। दो-चार मिनट बाद दुःख का आवेग कुछ कम हुआ और उनकी हालत कुछ बोलने लायक हुई। मैं सोच ही रहा था कि कोई-न-कोई ऐसी बात हुई है, जिसे कहने मे इनको सकोच हो रहा है। वह बोली, "निर्मला के बाबू-जी पकडे गये और जेल मे है। उनकी तबीयत भी अच्छी नही है।"

मुझे सकोच तो बहुत हुआ, फिर भी मैंने पूछा, "क्या बात हुई, क्यो पकडे गये ?"

"यह तो मैं नही जानती, वह बैंक मे काम करते थे, वहा कुछ गोल-माल हुआ बताते है; वह ऐसे आदमी नही है, मन्त्रीजी, पर हमारा नसीब खोटा है।" मैंने उनको धीरज रखने और छूट जाने आदि की बात कही। वह बोली, "यदि आप लोगो और ईश्वर की कृपा रही, तो वह छूट जायगे।"

मैंने कहा, "बहन, इन सब बाधाओ मे निर्मला की शिक्षा मे बाधा नही पडने देनी चाहिए।"

वह बोली, "अब तो निर्मला ही मेरा सहारा है, आपके हाथ है इसकी शिक्षा, मेरा जो कुछ होनेवाला है, वह तो होगा ही, पर निर्मला को आप आदमी बना देगे तो मै आपका उपकार कभी नही भूलूगी; मेरे भाग्य तो ऐसे ही थे, इस लडकी को भगवान् सुखी रक्खे और वह अपने पैरो पर खडी होने लायक बन जाय, यही मेरी चाह है।"

"मेरे लायक कोई काम हो, तो निर्मला द्वारा मुझे कहला देने मे सकोच न करे, विपत्ति मे तो हिम्मत से ही काम चलता है, निर्मला के पिताजी आ जायगे"—यह कहकर मैं बहुत ही दुखित मन से खडा हुआ। मेरा मन तो भारी था ही, पैर भी इतने भारी हो गये थे कि वहा से चलने मे उठ ही नही रहे थे।

प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा, "हम किसीको मुह दिखाने लायक नही रहे।"

फिर वह खडे होने की कोशिश करने लगी। मैं देख रहा था उनके शैथिल्य को। वह गुलाब के फूल-सी बहन आज निस्तेज, म्लान्न, क्षीण

और झडे हुए पत्तो की डाल-सी लग रही थी ।

मैं निर्मला से बराबर उनका हाल-चाल पूछता रहता । मुकदमा चल रहा था । काफी रुपये खर्च हो गये । निर्मला की मा के पास जो थोडा-बहुत जेवर था, वह भी खतम हो गये । अन्त मे आठ महीने के बाद निर्मला के पिता उस मामले मे निर्दोष साबित हुए । पर अब वह इतने थक गये थे कि कही काम करना नही चाहते थे । पहले भी उनका स्वास्थ्य अच्छा नही था, अब तो बिल्कुल ही खराब हो गया था । आर्थिक दशा शोचनीय हो गई थी । अन्त मे निर्मला की मा ने एक स्कूल मे नौकरी करना तय किया । वह ज्यादा पढी-लिखी नही थी, पर सिलाई अच्छी जानती थी । बहुत ही कठिनाई से काम चल रहा था । अब निर्मला किसी तरह स्कूल मे पास हो जाती थी, पहले की तरह क्लास मे फर्स्ट नही होती थी । जब कभी मैं निर्मला की मा से मिलता तो वह कहती कि अब तो मेरी यदि कोई इच्छा है और जो कुछ मैं कर रही हू, वह निर्मला को लिखा-पढाकर अपने पैरो पर खडी करने के लिए ही कर रही हू ।

एक दिन उन्होने मुझसे पूछा, "निर्मला को डाक्टरी पढाना कैसा रहेगा ?"

मैंने कहा, "अच्छा तो है, पर रुपया बहुत लगेगा, क्योकि डाक्टरी पढने मे खर्च अधिक होता है और समय भी ज्यादा लगता है ।"

"मै किसी कष्ट की परवा नही करती । मैं चाहती हू कि निर्मला किसीकी मोहताज न रहे । वह सम्मान का, स्वावलम्बन का और सेवा का जीवन जीये । मै ट्यूशन आदि करके किसी तरह काम चला लूगी, पर निर्मला को सफल देखना चाहती हू । उसके पिताजी तो अब शायद ही कुछ कर सके ।"

निर्मला मैट्रिक पास करके कालेज मे आई० एस-सी० मे भर्ती हो गई । स्कूल मे तो खर्च साधारण था, अब किताबो का, फीस का तथा अन्य खर्च भी बढा । निर्मला की मा स्कूल के काम के बाद ट्यूशन करती थी । अब वह अक्सर मुझे आते-जाते अपना सिलाई का झोला लिये मिल जाया करती । वह बडी कठिनाई से अपना काम चला रही

थी, फिर भी उन्हे दीनता का भाव छू तक नही गया था। वह न तो किसीसे सहायता मागती थी और न यही चाहती थी कि कोई उनकी आर्थिक सहायता करे। वह यदि कुछ चाहती थी तो बस सहानुभूति, जिससे वह इस दुख की नाव को खेकर पार उतार सके। निर्मला किसी तरह आई० एस० सी० मे पास हुई, पर डिवीजन अच्छा नही ला सकी, इसलिए डाक्टरी मे भर्ती होने मे कठिनाई होने लगी। यो भी मेडिकल के छात्रो के लिए जगह की कमी का सवाल रहता ही है। निर्मला डाक्टरी मे भर्ती न हो सकेगी, यह उसकी मा ने सोचा ही नही था। इसलिए वह इतनी दुखी और निराश दिखाई दी, जैसी पहले कभी नहीं हुई थी। उन्हे रोती देख मै काप उठा। मैंने बडी कोशिश की और बडी मुश्किल से निर्मला मेडिकल कालेज मे प्रवेश पा सकी। अभी तो ६ वर्ष पडे थे डाक्टरी पास करने के लिए। फिर भी उसकी मा किसी तरह यह बोझा ढोये जा रही थी। पर इस बोझ से वह ऐसी दब गई थी कि पैंतीस वर्ष की उम्र मे पचास की-सी लगने लगी। बाल सफेद होने लगे। दो-एक दात भी गिर गये। वह सुबह ५ बजे से रात के १०-११ बजे तक अथक परिश्रम कर रही थी। उनके सामने सिर्फ एक ही लक्ष्य था निर्मला को डाक्टर बनाना। बीमार पति की तीमारदारी, घर का काम, स्कूल मे पढाना, ट्यूशन पर जाना, जो कुछ मिले उसमे से निर्मला का खर्च निकालकर बचे हुए मे काम चलाना—इस तरह वह बहुत मूक तपश्चर्या कर रही थी, समाज के एक घर मे एक कोने मे जिसको शायद बहुत कम लोग जानते थे।

निर्मला मेडिकल फाइनल वर्ष मे थी। एक आपरेशन मे वह सहायक के रूप मे लगी थी। वह कुछ सामान लाने नीचे जा रही थी कि सीढी पर पैर फिसल जाने से गिर पडी और घुटने के बीच की हड्डी टूट गई। हड्डी जोडकर प्लास्टर किया गया। दो महीने तो बिछौने पर बीते ही, पर जब एक्स-रे करके देखा गया, तो मालूम हुआ कि पैर के साथ की हड्डी मे बोन टी० बी० हो गई है। यह बात निर्मला की मा से कुछ दिन छिपाने की कोशिश की गई। इस बीमारी मे तो लम्बा समय लगनेवाला था। मरे को मारे शाह मदार। इस

बार निर्मला की मा मिली। मैने उनको उदास देखकर पूछा, "बहन, अब तो दो-चार महीने की बात है, निर्मला पास कर लेगी, तो तुमको इतना सकट नही रहेगा।"

वह बोली, "भाईजी, यह होगा ? भगवान न जाने हमारे भाग्य मे क्या-क्या लिखा है !" यह कहते हुए वह बहुत ही अस्थिर लगी। मैने जब उनसे सहायता की बात की तो बोली, "आपकी कृपा से किसी तरह निभ रहा है। जब जरूरत होगी, तो कहूगी।"

मैंने कहा, "निर्मला, आपकी जैसी ही मेरी भी लडकी है। क्या मेरा उसके लिए कोई अधिकार या कर्तव्य नही !"

इस पर वह कहने लगी, "आप हमे आशीर्वाद दीजिये, हमारे लिए प्रार्थना कीजिये कि हम अपना मार्ग तय कर सके।"

मैं सोचने लगा कि मै किसी मानवी से बात कर रहा हू या किसी देवी से ! मैंने मन-ही-मन उस बहन को नमस्कार किया। निर्मला आहिस्ता-आहिस्ता अच्छी हो रही थी। उसके सरल स्वभाव तथा निर्दोष व्यवहार से कालेज के डाक्टर आदि प्रभावित थे। वे पूरी तरह उसके इलाज की व्यवस्था कर रहे थे।

निर्मला कालेज जाने लगी। उसका एक वर्ष तो नष्ट हो ही चुका था। इस वर्ष भी वह सर्जरी व्यावहारिक ज्ञान मे कुछ नम्बरो से फेल हो गई। इसका सभी लोगो को बहुत दु ख हुआ। पर उपाय क्या था ? निर्मला को तो इतनी निराशा हुई कि वह पढना ही छोड देना चाहती थी। उसके साथ की लडकिया प्रेक्टिस कर रही थी, और वह योही अपनी मा का भार बनकर पढे, यह उसे बर्दाश्त न था। पर उसकी मा निराश नही थी। उसने निर्मला को प्रोत्साहन देते हुए कहा, "मुझे किसी भी दु ख की परवा नही है। यदि तुम पास न कर सकी या डाक्टरनी न बन सकी, तो मै जी न सकूगी। क्या तुम मेरे सारे जीवन की साध नष्ट करना चाहती हो ? चाहे जितना भी रुपया लगे, चाहे फिर फेल हो जाओ, पर तुम्हे डाक्टरनी बनना ही होगा।"

निर्मला ने फिर पढना शुरू किया और उसकी मा एक घर से दूसरे, दूसरे से तीसरे घर में ट्यूशन करती रही। उसे न अपने शरीर

का ख्याल था, न किसी सुख-दुःख का। उसके सामने तो बस एक ही लक्ष्य था निर्मला को डाक्टरनी बनाना। वह चाहती थी कि निर्मला समाज के सामने इज्जत का, स्वावलम्बन का और सेवा का भला जीवन बितावे।

इस वर्ष निर्मला सभी विषयों मे पास हुई और उसे छः महीने के लिए अपने कालेज में हाउस सर्जन का काम मिला। निर्मला को लेकर वह बहन मेरे पास आई। मैं महिलाओं का एक अस्पताल चलाता था। उन्होंने कहा, "भाईसाहब, आपकी निर्मला ने एम० बी० पास किया है। मेरी जिम्मेदारी तो पूरी हो गई, अब मैं इसे आपको सौंप रही हूं।" यह कहते हुए उनका गला रुधा जा रहा था।

मैंने कहा, "बहन, आपकी तपश्चर्या पूरी हुई। आपको तो प्रसन्न होना चाहिए।"

उन्होंने कहा, "मैं प्रसन्न तो हूं, पर अब मैं ऐसी थकावट अनुभव कर रही हूं, जो मिट नहीं सकती। मैं चली जा रही थी, मेरे सामने सिर्फ एक ही लक्ष्य था। मैंने जीवन के सुख-दुखों को भुलाकर अपना तन-मन एक चीज के लिए लगाया। ईश्वर ने मुझे जो काम सौंपा था, उसे पूरा करने में मैंने कुछ उठा नहीं रखा। आज मैं मंजिल के पास सोच रही हूं, पिछले पन्द्रह वर्षों के संघर्ष की घड़ियों को। भाईजी, लक्ष्य की पूर्ति में जीवन कहां है? लक्ष्य के लिए साधना करते-करते मिट जाने की इच्छा या संकल्प में जो बल है, वह कितना बड़ा बल है, उसके अभाव का मुझे अनुभव हो रहा है। इसलिए अब मैं आप सबसे विदा लेना चाहती हूं।"

जब यह बहन पहले-पहल मुझसे मिली थी, तब इनके चेहरे पर एक भाव पढ़ा था, आज बिल्कुल दूसरा भाव मैं देख रहा हूं। उस समय इनकी उम्र पच्चीस वर्ष की थी और लावण्य, आशा, उत्साह, उमंग थी। आज यह बहन चालीस वर्ष की है, पर इनकी हालत साठ वर्ष की बुढ़िया जैसी है। पन्द्रह वर्ष के निरन्तर संघर्ष में इनके सारे मनसूबों, सारी इच्छाओं और सारे उत्साह को एक ही दिशा मिली। यह बहन तिल-तिल अपने-आपको मिटाकर सच्चाई और नेकी का जीवन

जीकर, ससार की अनेक विघ्न-बाधाओ का सामना करती रही, सिर्फ इसलिए कि वह हमे एक सुयोग्य नागरिक प्रदान कर सके।

अब निर्मला माताओ-बहनो की सेवा कर रही थी। निर्मला की मा बीमार रहने लगी। एक दिन मै उससे मिलने गया, तो मालूम हुआ कि अब वह पूर्ण रूप से शान्त है। उसे न किसीसे कुछ कहना है, न कुछ करना। पर उसके चरित्र से जो सुगन्ध चारो ओर फैल रही थी, उसकी गन्ध से कोई भी आदमी मुग्ध हो सकता है। एक दिन मालूम हुआ कि निर्मला बिना मा की हो गई है। पर ऐसी मा तो सबकी मा है। वह क्या मर सकती है!

मैंने निर्मला से कहा, "तुम्हारी मा ने जो जीवन की पवित्रता, अच्छाई और आदर्श रखा है, वही तुम्हारी सच्ची मा है और उसी मा की पूजा करो। पार्थिव मा तो आज नही तो कल जानेवाली ही थी। पर तुम्हे जो विरासत मिली है, वह किस भाग्यवान बेटी को मिल सकती है!"

निर्मला बूढे बाप की सेवा करते हुए मा के आदर्श को सामने रखकर चलने की कोशिश कर रही है। निर्मला की मा बेटी के रूप मे आज भी मेरे सामने है, और जो लोग इस स्थिति से कुछ भी सम्बन्धित रहे हैं, उन सबके सामने रहनी चाहिए। स्व० सुभद्राकुमारी चौहान ने कहा था, "बचपन बेटी बन आया।" बेटी मे मा और मा मे बेटी समायी हुई है।

३ : दो चित्र

सम्भल (मुरादाबाद) मे हम लोगो का एक खादी उत्पत्ति केन्द्र था। कभी-कभी मैं उसे देखने जाया करता था। एक बार का जिक्र है, वहा काम करते हुए मैंने एक औरत को देखा। दुबली, पतली, ठिगनी-सी थी वह। गेहुआ रग, बडी-बडी आखे, चिपके गाल और लम्बी-सी

ठुड्डी। एक फटा-सा पाजामा और कुरती पहने तथा जगह-जगह से सिली हुई ओढनी ओढे वह अपना काम कर रही थी। मेरी निगाह उस पर पडी, तो न मालूम क्यो, वह मुझे नेक और भली औरत मालूम हुई। मैंने अपने कार्यकर्ताओ से दरियाफ्त किया, "यह वहन यहा कितने दिनो से काम करती है ?" उन्होने वताया, कोई वारह-एक महीने हो रहे होगे।

"क्या देते हो इसे ?"

"जितना काम करती है, उतना पाती है। काम होता है, तो चार आने, छ आने और कभी-कभी आठ आने तक पा जाती है। जव काम नही रहता, तव कुछ नही पाती।"

मेरी दिलचस्पी कुछ वढ गई। मैंने उस वहन को वुलाया और पूछा, "क्या कमा लेती हो ?"

"कमा क्या लेती हू, किसी तरह पेट पालते है, लालाजी !"

मैंने पूछा, 'घर मे कमानेवाले कौन है ?"

"वस, मैं जो दाल-दलिया ले जाती हूं, उसीपर पाच प्राणी गुजर करते है। एक वूढा अन्धा ससुर है, एक ननद है, दो वच्चे हैं, एक आठ साल का, एक पाच साल का।"

"और खाविन्द ?" मैंने पूछा।

"खाविन्द को तो खुदा के घर गये चार साल हो रहे हैं ?"

'इन चार सालो से कुनवे को तुम्ही सभाले हुए हो ?"

"खुदा सवको सभालता है, लालाजी ! जितना मुझसे हो पाता है, अपना फर्ज अदा करने की कोशिश करती हू। जव काम कम होता है, हमे मजदूरी कम मिलती है, उस हालत मे हम सव-के-सव आदमी पूरा खाना नहीं पा सकते, पर मैं भरसक अपने वूढे ससुर को कभी भूखा नही सुलाती। उनके वाद वच्चों और ननद का नम्वर आता है, फिर मेरा। आप लोगो की मेहरवानी से गुजर हो रही है।"

उनके एक-एक शब्द से सच्चाई और कर्त्तव्यनिष्ठा प्रकट हो रही थी। मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि हम समाज-सेवा, देश-सेवा का दम भरनेवालों मे और इस वहन मे कितना अन्तर है ! इतने मे हमारे एक

कार्यकर्ता ने आकर कहा कि हाट मे चलने के लिए कहते थे आप। समय तो हो गया है। उस वहन से बाते तो और करनी थी, पर वह कल पर छोड मैं हाट चला गया, जो वहा से चार-पाच मील दूर देहात मे लगती थी। वहा हम लोग सूत खरीदा करते थे। जो कत्तिने सूत लाती उनको हम सूत के बराबर धुनी हुई रुई देते और कताई के पैसे दे देते। बहुत-से भाई-वहन वहा सूत सरा रहे थे। मैं ध्यानपूर्वक सब देखता रहा। भीड कम होने पर मैने एक बुड्ढी औरत से, जो देखने मे साठ वर्ष की मालूम होती थी, पूछा, "माताजी, क्या मिला कताई का ?"

"साढे पाच आने पैसे मिले है।"

"कितने दिन की कताई है यह ?'

"लाला, इतवार को हाट लगती है, तब कभी पाच आने, कभी चार आने और कभी तीन आने के करीब मिल जाते है। सूत तो हम रोज ही कातते है।"

"आपका गाव यहा से कितनी दूर है ?"

"होगा ढाई-तीन कोस।"

मैं सोचने लगा कि दो-तीन पैसे रोज की मजदूरी, चार-पाच कोस पैदल चलकर आना तथा रोज तीन-चार घण्टे कातना ! यह है हिन्दुस्तान की गरीबी का असली रूप ! हमारा देश कितना कगाल है, यहा के देहातो के लोगो के लिए दो-तीन पैसे की कितनी कीमत है, उसको हम कलकत्ता, बम्बई आदि शहरो के रहनेवाले कैसे समझ सकते है ? भारत माता की सूखी हड्डियो का ढाचा, रूखे-बिखरे सादे बाल, फटे चियडो से ढका तन, झुर्रियो से भरा मुह, मुझे इस माता मे दिखाई दिया और आखे सजल हो आई। उस वहन के फटे कपडो को देखकर मैंने अपने कार्यकर्ता से कहा, "इस माता को दो पाजामे, दो ओढनी, दो कुरती भडार की तरफ से दे देना।"

उस सूखे पोपले, झुर्रियो से भरे मुह पर लाली छा गई, आखो मे सुर्खी आ गई, भौहे तन गई और वह तमककर बोली, "भिखारी समझा है हमको, लाला ने ! हम गरीब हे, मजदूरी करके पेट पालते है, हमे

आपकी दया नही चाहिए। आपके कारिन्दे हमारा सून खरीद लिया करें, तो हम इसीको आपका बहुत बडा अहसान मानेगी। हम रोज़ सूत कातते वक्त हाट के दिन गिना करती है, तीन कोस से चलकर आती है, पर कभी-कभी जब ये लोग कह दिया करते हे कि हमारे पास सूत और कपडो का स्टाक ज्यादा हो गया है, उसके बिके बिना हम सूत नही खरीद सकेंगे, तो हमारे ऊपर जैसे वज्र गिर पडता है। आप महरबानी करना चाहते हैं, तो बस इतनी कर दीजिये कि हमारा सूत बिक जाया करे। लाला, हम गरीब है तो क्या हुआ। खुदा ने हाथ-पाव दिये है, मेहनत करके खाते है, हम खैरात नही लेते।"

मेरे अभिमान को चूर कर दिया इस बहन ने। हम रात-दिन गरीबों के श्रम पर पलनेवाले दया करने चले हे इन स्वाभिमानी आदमियो पर। हमे शर्म आनी चाहिए इस ढोंग, दया, धर्म और पाखण्ड-भरे जीवन पर! दूसरे दिन वह कलवाली बहन काम करने आई, तो मेरी फिर इच्छा हुई कि उससे बातें करू। मैंने कहा कि तुम लोग तकलीफ मे हो, भण्डार की तरफ से तुमको बीस-तीस रुपये की मदद दी जा सकती है।

"लालाजी, काम करती हू, इसकी मजदूरी पाती हू। फिर ये रुपये मैं किस बात के लू ? यदि आप यह प्रबन्ध कर दे कि मुझे बराबर काम मिलता रहे, तो आपकी बडी मेहरबानी हो।"

"तुम्हारी उम्र कितनी है ?"

"होगी कोई पच्चीसेक की।"

"तो तुम निकाह क्यो नही कर लेती ? तुम लोगो मे तो निकाह होता ही है।"

"हा, होता तो है, पर मै निकाह कैसे कर सकती हूं ? इन अन्धे बुड्ढे ससुर को यो छोडकर मैं निकाह करूं, तो क्या खुदा मेरा भला करेगा ? मेरा फर्ज है कि मै अपने मन को काबू मे रखू और खुदा ने जो काम मुझे सौंपा है, उसे करती रहू। यदि मेरे नसीब मे सुख बदा होता, तो शादी की थी न, वह क्यो चले जाते ? अब निकाह करने से ही क्या होगा ? मुझसे जहातक बन पडे, इन बुड्ढे की सेवा करती रहूं और इन बच्चो को आदमी बनाने की कोशिश करू। खुदा की

मेहरबानी होगी, ये बच्चे आदमी बन जायगे, तो सब हो जायगा।"

आज से करीब बारह-चौदह वर्ष पहले के इन दो बहनो के दो चित्र आज भी मेरी आखो के सामने घूम रहे हैं। ये चित्र ऐसे है, जो कभी भुलाये नही जा सकते। ये चित्र हिन्दुस्तान की भयकर गरीबी को और गरीबी मे भी स्वाभिमान, कुल-मर्यादा, कर्तव्यनिष्ठा और कष्टसहन तथा सच्चाई को छिपाये है। हम सभ्य और पढे-लिखे सुसस्कृत कहे और समझे जानेवाले लोग यदि छाती पर हाथ रखकर सोचे, तो जो हालत ऊपर वर्णन की गई है, उसकी जिम्मेदारी हमपर ही है।

४ : घूरे का घर

सन् १९३४ की जनवरी मे उत्तर बिहार मे भीषण भूकम्प हुआ। इस भूकम्प ने बिहार के लोगो को तो हिला ही दिया, साथ ही सारे भारत के लोग भी बिहार की दैवी विपत्ति से व्याकुल हो उठे। उन दिनो आन्दोलन चल रहा था। देशरत्न राजेन्द्रबाबू से लेकर बिहार काग्रेस के सारे कार्यकर्त्ता जेल मे बन्द थे। सरकार ने भूकम्प की तकलीफो को महसूस किया और कार्यकर्ता मुक्त कर दिये गए। राजेन्द्रबाबू की सदारत मे भूकम्प-अचलो मे सहायता पहुचाने के लिए एक कमेटी बनी। इस कमेटी को अपनी-अपनी सस्थाओ की तरफ ने सहायता पहुचाने के लिए हिन्दुस्तान के हर प्रान्त के लोग आये थे। मुजफ्फरपुर, दरभगा, मुगेर—ये तीन जिले भूकम्प से अधिक पीडित थे। इन तीनो जगह मे सहायता करनेवालो की बाढ-सी आ गई। कलकत्ता तो बिहार के बहुत नजदीक ठहरा, फिर बिहार के लोग यहा रहते भी बहुत है। इसलिए कलकत्ता से इतने ज्यादा लोग और सस्थाए गई कि उनके खेमे लगाने तथा रहने का प्रबन्ध करना भी एक सवाल-जैसा ही बन गया।

मैं भी पाच सवारो मे नाम लिखाने वहा जा पहुचा। सभी जगह घूम-फिर

कर भूकम्प के दृश्य देखे, सहायता करनेवाली सस्थाओ तथा कार्यकर्ताओ को भी देखा। भूकम्प से धराशायी होनेवाले मकानो का मलवा हटाना काफी वडा काम था। आशका हो रही थी कि इस मलवे के नीचे शायद आदमी दवे पडे है। ऐसी दर्द-भरी हालत थी वहा की। ऐसे मौके पर भी देखा कि हमारे प्रचारक अपना काम कर रहे हैं। एक जुलूस निकला कार्यकर्त्ताओ का—नेताओ का—जिनके हाथो मे कुदालिया और झुडिया थी मलवा हटाने के लिए। जुलूस सजाकर खडा किया गया और फोटो उतारे गये। मैने एक नेता से पूछा कि ये फोटो क्यो उतारे जा रहे है? मलवा हटाने के काम मे तो इससे देर ही हो रही है। इसपर नेता महोदय ने कहा कि इसका वहुत प्रभाव पडेगा। जव ये फोटो अखवार मे छपेगे तो लोग समझेगे कि कितना काम हो रहा है। मैं कुछ समझ न सका। सोचा, अच्छी वात है, प्रभाव पड सकता है। पर देखा कि फोटो उतर जाने के वाद वे कुदालिया और झुडिया वही रह गई! यदि मलवा हटाया गया, तो उसे हटानेवाले लोग दूसरे ही थे।

मुजफ्फरपुर के एक गाव की तकलीफ की वात सुनकर हम लोग उस गाव को देखने और वहा के लोगो से मिलकर वातें करने के लिए चल पडे। कुछ दूर तक तो मोटर से गये, पर आगे पानी भरा था और उसमे एक छोटी-सी नाव चल रही थी। उस नाव पर कुछ दूर गये, पर नाव किनारे तक नही जा सकती थी; क्योकि आगे पानी वहुत कम था। उस पानी को पार कर हम लोग समतल जमीन पर पहुचे। यह पानी भूकम्प के कारण फटी जमीन से निकला था और एक छोटी-मोटी नदी-जैसा वन गया था। आगे जाकर देखा, तो जमीन मे इतनी वडी दरार फटी पडी है कि यदि उसमे हाथी भी समा जाय, तो कुछ पता न चले। मैं सोचने लगा कि पृथ्वीमाता का पेट इतनी भयकरता से क्यो फट गया? गाधीजी ने कहा था कि हरिजनो के साथ हमने जो अन्याय किया है, उसके पाप का यह परिणाम है। कुछ समझ मे नही आया कि इस पृथ्वी के फटने का कोई ऐसा भी कारण हो सकता है, जिसका हमारे जीवन से, हमारे आचरण से सम्वन्ध हो। तुलसीदास की एक

चौपाई याद आई—"अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।" क्या सचमुच धरा हमारे पापो से अकुला गई है ?

यह सब सोचते तथा रास्ते मे भूकम्प के दृश्य देखते हुए कोई दो मील पैदल चलकर हम लोग एक गाव मे पहुचे। यह गाव राजपूतो का था। भूकम्प ने बुरा हाल कर दिया था इस गाव का। एक घर मे गये। घर के हाल देखे, सारे छप्पर जमीन पर लोट रहे थे। कुआ बालू से भर गया था। खेतो की जमीन पानी से भर गई थी। ये लोग दस-पाच दिन पहले तक खुशहाल किसान थे। आज इनके पास न खाने के लिए अन्न है, न रहने के लिए घर है और न पानी पीने का कुआ है। ये लोग करीब-करीब भूखे ही रह जाते है। एक जगह दस-बीस आदमियो को इकट्ठा किया, बातें की, तो उन्होने कहा कि हम लोग राजपूत है। हम धर्म यानी खैरात लेकर नही खा सकते और न खैरात का कपडा ही ले सकते है। मजदूरी करने की बात कही, तो कहने लगे कि हमने मज़दूरी कराई है, की नही। यदि मजदूरी की है, तो धरती माता की की है। आज धरती माता ही जब फट पडी, तो फिर हम क्या करे ? जिस दिन धरती माता राजी होगी, उसी दिन सबकुछ होगा, नही तो फिर कोई उपाय नही। इस भूख मे, इस कष्ट मे भी यह स्वाभिमान, यह आत्मविश्वास हमे चकित करनेवाला था। अन्त मे हमने उनको उधार लेने पर राजी किया और साथ के स्वयसेवको से कहा कि वे पास के केन्द्र से इनकी सारी व्यवस्था करे।

घूमते-घामते गाव के बाहर निकले, तो थोडी दूर पर एक टूटी-सी घास की झोपडी दिखाई दी। वहा गये, तो देखा कि यह जगह गाव का कूडा फेकने की है। वहीपर दो-एक लकडियो के सहारे थोडी-सी घास डालकर एक झोपडी खडी की गई है। हवा और शीत को रोकने के लिए चारो ओर टूटी चटाई लगाने की व्यर्थ-सी चेष्टा की गई है। नजदीक गये, तो इस घूरे के घर के अन्दर आदमी की आखे-सी दिखाई दी। इन आखो मे ऐसी चमक थी कि हमे याद आया, उस राजकुमारी को भी उस मिट्टी के टीले के अन्दर इसी तरह कही च्यवन ऋषि की आखो की चमक तो नही दिखाई दी थी !

उस झोपडी के पिछले हिस्से मे जब यह देखा, तो सामने जाकर सारी स्थिति समझने की इच्छा हुई। वहा जाकर जो देखा, उनका वर्णन करना हमारी बुद्धि के वश का नही। एक स्त्री, जिसकी उम्र कोई तीस के करीब होगी, भयकर काली, मूखा मुह, उलझी-रूखी लटे, दुबला शरीर, एक चिथडे-जैसी मैली साडी पहने दो बच्चो को छाती से चिपकाये बैठी थी, वहा। एक बच्चा जो सात-आठ वर्ष का होगा, पास मे बैठा था। दो मिट्टी की हाडिया और थोडी-सी घास, जिसे उन लोगो ने बिछा रखा था, यही सारी सामग्री थी उस घर की या उस गृहस्थी की। बच्चे तो तीनो नगे थे ही। हमे देखकर वह बहन खडी हो गई, तो वह फटी साडी उसकी लाज खोने के लिए तैयार! वह उसको कभी इधर खीचती, कभी उधर खीचती। हमे वहा खडे रहने मे भी सकोच होने लगा। इस यात्रा मे अभी तक ऐसी हालत कही नही देखी थी। भूकम्प के जो दृश्य देखे, उनसे ऐसा लगता था कि जिनके मकान थे, वे गिर गये है। बाढ मे जैसे गरीबो के घर बह जाते है, पशु बह जाते है, चारा नष्ट हो जाता है, खेती बिगड जाती है, ऐसी हालत वहा नही देखी थी। यहा के दृश्य भी काफी कष्टदायक थे, पर बाढ मे जिन लोगो की हानि होती है, उसकी अपेक्षा यहा सम्पन्न लोगो की हानि हुई-सी लगती रही, इसलिए ऐसा दर्द नही हुआ जो विकल कर दे। पर जब इस बहन को देखा, तो वहा खडा रहना भी मुश्किल हो गया। जो हो, उनसे बाते करना जरूरी था। हमने पूछा, "इस कूडे के पास तुमने घर क्यो बनाया? जरा आगे गाव मे बनाती।"

"बाबूजी, हम हरिजन (डोम) है। हम लोग घूरे पर ही रहते है, गाव मे नही रह सकते।"

"तो क्या बराबर ऐसे ही घर मे रहती हो?"

"नही बाबूजी, पहलेवाला घर तो गिर गया। अब यही जगल से घास-फूस इकट्ठा करके यह खडा किया है। सामान खरीदकर हम घर नही बना सकते।"

"ये बच्चे तुम्हारे ही है, फिर खाने-पीने का क्या करती हो?"

इसपर वह कुछ बोली नही। मैने फिर पूछा, "खाने-पीने का

क्या इन्तजाम करती हो ?"

"इन्तजाम क्या बाबूजी, कल से तो ये ऐसे ही है। इन बच्चो के पिता मजदूरी करने गये है। उनको मजदूरी मिलेगी और वे कुछ लायगे, तो खायगे, नही तो भगवान मालिक है ही।"

"तो क्या कल वह कुछ लाये नही ?"

"नही, बाबूजी! दिन-भर खटकर वह योही लौटे थे। थोडा-सा बचा हुआ सत्तू खिलाकर आज सुबह उनको भेजा है। आशा है, आज तो वह कुछ जरूर लायगे।"

"यहा तुम्हारे पास सहायक समिति के लोग नही आये ? यहा तो बहुत-से लोग आये हैं, गरीबो की सहायता करने।"

"नही, बाबूजी, यहा तो कोई नही आया। जिनको भगवान ने ही नीच बना दिया, उनके पास बडे लोग कैसे आ सकते है ?"

"गाव के लोग भी तुम्हारी कोई मदद नही करते ?"

"हम नीच जो है, हमारे घर वे कैसे आ सकते है ? और फिर वे बेचारे तो खुद तकलीफ मे है।"

"क्या तुम्हारे पति को रोज मजदूरी नही मिलती ?"

"रोज मिल जाय तब तो फिर कष्ट किस बात का ?"

शाम को सात बजे के करीब हम लोग लौटकर अपने खेमे मे आ गये। पर इस घूरे के घर का दृश्य और इस हरिजन बहन की हालत पर मन मे नाना तरह के विचार चलते रहे। कैसी हालत है हमारे देश मे मानवता की! हमने अपने लोगो की कितनी भयकर अवहेलना की है और कितनी पीडा पहुचाई है, हमारी भ्रान्त धार्मिक भावना ने इस बहन-जैसी अनेको को! एक तरफ है हमारी धार्मिकता, हमारा अभिमान और हमारा ऊचे बनने का दावा! एक यह बहन है, जो कहती है कि गाव के लोग बहुत कष्ट मे है, वे हमारी सहायता कैसे कर सकते है! इस पीडा मे, इस अपमान मे, भी गाव के लोगो का दुख-दर्द हे उसके मन मे। कोई उसकी सहायता नही करता। वह भूखी है, नगी है, उसके बच्चे शीत से काप और भूख से बिलबिला रहे है, पर वह किसी अडोसी-पडोसी पर, सहायता करने के लिए यहा आई हुई सभा-समितियो

पर—किसी पर रोष नही करती। वह स्वत' कहती है, हम नीच जो हैं।

शायद यह अवस्था दुनिया मे और कही नही है। यह सब तो हमारे इस धर्म-प्रधान देश की ही विडम्बना है। आज भी वह घूरे का घर आखो मे ज्यो-का-त्यो फिर रहा है। क्या स्वतन्त्र भारत मे भी ऐसे घर और ऐसी अवस्था हम वर्दाश्त करेंगे ?

५ : डायमण्ड हारबर का खादी-मन्दिर

कलकत्ता से करीब ३० मील पर डायमण्ड हारवर एक गाव है। इस जगह का महत्व इसलिए ज्यादा वढ गया है कि वगाल सरकार ने यहा पर एक विशेष प्रकार से प्रवन्ध कर रखा है। यही से होकर सब वडे-वडे जहाज भी गुजरते है। यहा पर पलटन भी काफी सख्या मे रहती है। जिस जगह पर पलटन रहती है उसको आजकल 'सुरक्षित क्षेत्र' घोषित किया गया है और इसीलिए लोग उधर से आ-जा नही सकते। कलकत्ता के वावू लोग छुट्टी के दिन यहा मन वहलाने के लिए आया करते हैं। गगा का पाट यहा वहुत चौडा हो गया है। एक प्रकार से समुद्र जैसा ही लगता है। यह जगह वहुत सुन्दर है और इसके आस-पास वहुत-से छोटे-छोटे गाव है। यहा की जनता अत्यन्त गरीव है। यहापर साल मे केवल एक धान की फसल होती है। जनता के पास दूसरा कोई धन्धा नही है, इसलिए यहा की गरीवी नित्य वढती जा रही है। अन्य जगहो की अपेक्षा यहा की जनता पिछडी हुई भी अधिक है। यही के कमारपोल नामक एक गाव मे गत २० जनवरी (१९४०) को ८ वजकर ३० मिनट पर मैंने सत्याग्रह किया था। तव से उसका क्रम जारी है। प्रतिदिन किसी-न-किसी गाव या हाट-वाजार मे सत्याग्रह होता है। मैंने सत्याग्रह करने के लिए यही जगह क्यो चुनी, यह वताने

के लिए ही यह लेख लिख रहा हू ।

यहापर खादी-मन्दिर नाम की एक सस्था आठ-नौ वर्ष से लोक-सेवा का काम कर रही है। इस सस्था को यहा के वकील श्री चारुचन्द्र भडारी ने सन् १९३१ मे शुरू किया था, पर शीघ्र ही सन् १९३२ का आन्दोलन प्रारभ हो जाने के कारण वह जेल चले गये। जेल से छूटने के बाद उन्होने अपनी वकालत छोड दी। मन मे देश-सेवा की लगन, मा के बन्धनो का दर्द और गरीब जनता के दु खो का अनुभव था, इसीलिए उन्होने सोचा कि सम्पूर्ण शक्ति और समय दिये बिना कार्य नही हो सकता। चारुबाबू को दो साथी और मिले, जो दो भाई है। एक तो एम० ए० तक पढे है और एक आई० ए० तक। अच्छे परिवार के है। इनके पिता प्रोफेसर है। पिता से विचारो का मेल न होने के कारण ये दोनो भाई चारुबाबू के साथी बन गये। पर इन लोगो के पास न तो कोई साधन था, न कोई सहायक। ऐसी परि-स्थिति मे काम करने मे काफी दिक्कतो का सामना करना पडता था। कुछ दिनो के बाद एक सज्जन ने आठ बीघा जमीन एक वर्ष खेती करने के लिए मुफ्त दी। इन लोगो ने स्वय खेती की, जिससे थोडी बचत हुई। किन्तु फिर भी थोडे दिन के अन्दर चारुबाबू की स्त्री के गहने, जो बहुत ही सामान्य थे, एक-एक करके सब बिक गये, यहातक कि चारुबाबू की एक घडी थी, वह भी बेच देनी पडी। अन्त मे यहातक नौबत पहुची कि दाल-भात दो चीजो मे से दाल छोडकर केवल भात पर ही लोगो को गुजर करनी पडी। जरा सोचिए तो सही कि जो आदमी दो-तीन सौ रुपया महीना कमा सकता हो, जिसका पिता प्रोफेसर हो और जो उससे कहे कि घर मे आनन्द से रहो, दस-बारह रुपया महीना जेब-खर्च के लिए लो, अच्छा खाओ, अच्छा पहनो, अच्छे मकान मे रहो, वही व्यक्ति दाल न मिलने के कारण केवल भात पर ही गुजर करे, यह कैसी बात है ? इसके पीछे कितना महान् आदर्शवाद है! देश-सेवा की कितनी प्रबल भावना है! यदि ऐसा त्याग, ऐसी लगन हमारे कार्यकर्त्ताओ मे आ जाय, तो इस पराधीन देश को स्वाधीन होने मे देर न लगे।

इनसव कठिनाइयो का सामना करते हुए ये लोग अपना कार्य वरावर करते रहे। आज इनके साथ चौदह कार्यकर्त्ता है, जिनमे आठ रुपये से ज्यादा कोई भी नही लेता। दो तो ऐसे भी है, जो अपने घर से ही खाते-पीते है और दिन-रात इनके साथ कार्य करते हे। गावो मे इनके केन्द्र है। खादी-मन्दिर का मुख्य उद्देश्य तो जनता के अन्दर राजनैतिक जागरण तथा स्वालम्वन की भावना पैदा करना है। इन लोगो ने इसके लिए मुख्य साधन चुना है वस्त्र-स्वावलम्वन का काम। वैसे तो ये लोग गावो मे हरिजन-सेवा तथा शरावबन्दी करना, आपसी झगडो को आपस मे ही तय करा देना तथा गाव के स्वास्थ्य और सफाई और सामान्य औषध-वितरण करने का काम भी करते हें; पर मुख्य काम वस्त्र-स्वावलम्वन का ही है।

इस समय इनके कई केन्द्र गावो मे खुले हुए हैं, जिनमे ४७०चर्खे चल रहे हैं। जो सूत तैयार होता है, उसका कपडा विनवाकर जिनका सूत होता है उनको दे देते है। यहा लोगो के पास नकद एक रुपया भी मिलना मुश्किल है और इसलिए उनको धान वेचकर सव चीजे लेनी पडती हैं। कपडा भी लोग धान वेचकर ही लेते है। पर जिन घरो मे चर्खों का प्रचार हुआ है उनमे से मैंने कई घरो को देखा है और उन लोगो मे वाते की है। उनमे कपडे का सवाल तय-सा हो रहा है। वे अपने सूत को वना लेते हैं। ऐसे अपने सूत के वने कपडो को पहने हुए कुछ लोगो को मैंने तथा भाई भागीरथजी ने देखा है।

एक वहन तो इतना सूत कातती है कि उसके घर के पाच आदमियो के साधारण कपडे उससे वन जाते हैं, और एक अन्य वहन ने वर्ष मे करीव अट्ठारह रुपये सूत कातकर ही कमाये है। इन गरीबो के लिए डेढ रुपये महीने की सहायता सामान्य वात नही है। चर्खों की माग वहुत है, पर ये चर्खे दे नही सकते; क्योंकि इनके पास जो कुछ पूजी है, वह कुल चारसौ रुपयो की है। यह भी अभी हुई है, पहले तो कर्ज ही था। इसीमे चर्खे देना, रुई देना और सूत का कपडा विनवाना, ये सब करना असम्भव है। मुझे तो आश्चर्य हुआ कि ये लोग इतनी कम पूजी मे और इतने कम साधनो मे कैसे काम चलाते हैं।

मुझे मालूम है कि वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए दूसरी जगहो पर हजारो रुपयो का खर्चा और हजारो की पूजी लगी रही, तब कही थोडी सफलता मिली है। पिछले दिनो यहा अकाल पडा था तब भी इस सस्था ने अच्छी सेवा की थी। इन्होने मारवाडी रिलीफ सोसाइटी और पश्चिम बगाल अकाल बाढ सेवा समिति से सहायता पाकर यहा की बिल्कुल ही निरान्न प्रजा को अन्न पहुचाया तथा उनको धीरज और साहस दिलाया था। हरिजन पाठशाला तो चलती ही है। गाव के अन्य प्रश्न, जैसे बीमारो की दवा आदि भी करते है। ये गाव के सुख-दु ख के साथी बन गये है, इसलिए गाव के लोगो मे इनका अच्छा आदर और प्रेम है। ये लोग बिलकुल महात्मा गाधी की विचारधारा के अनुसार चलने का प्रयत्न करते हैं। पिछले कुत्सित प्रचार के कारण बगाल मे महात्मा गाधी का थोडा-बहुत विरोध हुआ, उसका इनके कामो पर कुछ असर नही पडा। जो लोग विरोधी है, वे भी इनकी सच्चाई मे विश्वास करते है। गाधी सेवा-सघ की मीटिंग के समय इन्होने करीब एक हजार रुपया चन्दा जमा करके गाधीजी को दी जानेवाली थैली मे भेट दिया था।

आज इस सत्याग्रह-सग्राम मे इनके रचनात्मक कामो के असर की वजह से चौदह सज्जन, जो बिल्कुल गाधीजी की शर्तो को पूरा करनेवाले है, सत्याग्रह करने के लिए चुने गये है। इनके प्रधान श्री चारुबाबू तो सत्याग्रह करके एक वर्ष के लिए जेल चले गये। ऐसी सस्था और ऐसे कार्यकर्त्ताओ का सहयोग तथा आग्रह मुझे यहा सत्याग्रह करने को ले आया। मुझे उसमे इनके सहयोग से बहुत सुविधाए मिली। मुझे खुशी है कि ऐसे लोगो का सहयोग मिला, जिसका मिलना सौभाग्य की बात है।

६ : एक दिन की बात

मेरे एक मित्र है, जो स्वभाव से सहानुभूतिशील हैं। देश और समाज की सेवा का भाव रखते है और जितनी बन सके उतनी सेवा करते भी है। पर इनकी कितनी ही मुश्किले है, जो प्राय. हर आदमी को रहा करती है। फिर भी अलग-अलग आदमियो की अलग-अलग स्थितिया होती हैं—मानसिक, आर्थिक और सामाजिक। मेरे ये मित्र बहुत सोच-विचार करनेवाले आदमी है। ये मेरे बहुत नजदीक के मित्र है और इनके बारे मे मैं प्राय सभी बाते जानता हूं। इनके लिए मेरे मन मे काफी सहानुभूति और श्रद्धा भी है। यहा इन मित्र के बारे मे लिखना मेरा कोई उद्देश्य नही, यहा तो एक स्थिति का, एक घटना का, वर्णन करना है। पर वह घटना इन्हीसे सम्बन्धित है। मेरे मित्र जरा नाजुक तबीयत के हैं, दिल-दिमाग से अमीर और रईस भी। अनजान लोग इन्हे धनी भी मानते है और इसकी सजा भी इन्हे देते है। जो भी हो, इनके बारे मे तो मुझे अपना लोभ सवरण करना ही होगा, नही तो जिस घटना का मैं वर्णन करना चाहता हू, वह इनके बारे मे सोचने और लिखने मे ही खो जायगी।

चार-पाच दिन पहले शाम को मैं उनसे मिला तो वह बहुत उदास, थके और दुखी से दिखलाई पडे। मेरे लिए यह कोई नई बात नही थी। बहुत बार ऐसा होता है और मैं उनको इसी तरह की स्थिति मे देखा करता हूं। हा, इसका कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है और वह कारण ज्यादातर सामाजिक, राजनैतिक या इसी तरह की कोई घटना होती है। आज भी उनको देखते ही मैंने समझ लिया कि वह कहीं चोट खा गये हैं। मैं तो व्यावहारिक आदमी हूं। इसीलिए उस भावुक आदमी के प्रति आदर का भाव रखते हुए भी मैं उनकी भावनाओं के लिए उनसे रोज झगडता हू। जो हो, मैंने पूछा, "कहिए, आज कहा क्या देख आये?"

वह जरा चौंके और बोले, "योही संसार मे न जाने कहा-कहा क्या-

क्या हो रहा है, उसे देखने से भी क्या होता है और सोचने से भी क्या होता है।

मैंने कहा, "तुम्हारे जैसे वेवकूफो को दुख होता है और उसको अपना दुख वनाकर घिरे रहते है, सोचते रहते है। जो कुछ करने की शक्ति है, वह भी उसी दुख मे योही नष्ट होती रहती है।"

उन्होने कहा, "अच्छा, फिलहाल कोई दूसरी वात करे।"

"दूसरी वात कैसे करे ? क्या हम इतने गये-बीते है कि जिस घटना से तुम इतना विकल हो जाते हो, उसे हम सुने और समझे तक नही ?"

अन्त मे मैंने उन्हे सारी कहानी कहने के लिए राजी कर लिया। उन्होने कहा, "तुम जानते हो, मुझे फलो का कितना शौक है और मै उन्हे तन्दुरुस्ती के लिए कितना जरूरी मानता हू। फिर आमो की तो वात ही क्या, आजकल तो आमो का मौसम है। तुम यह भी जानते हो कि मैं आमो का विशेष रूप से शौकीन हू और जव रुपये का एक आम आता था, तव भी अपने दोस्तो के यहा आम भेजा करता था। आज जव मैं आम लाने गया, तो वढिया आम मिल गये। सोचा, ज्यादा ले लू, दो-चार मित्रो के यहा भेज दूगा।"

मैंने वीच मे ही रोककर कहा, "रोटी की वात क्यो नही करते, जिसका मिलना कठिन हो रहा है। फलो की वात करते हो और स्वास्थ्य के लिए उन्हे जरूरी वताते हो, यही तो तुम्हारी भावुकता है।"

वह वोले, "देखो, ऐसा करोगे तो मैं कुछ भी कह नही सकूगा।" फिर उन्होने कहा, "मेरे एक रिश्तेदार वहुत गरीव है। उनके छोटे-वडे आठ वच्चे हे। अचानक मुझे उनकी याद आई। मैं सोचने लगा, जिन मित्रो के यहा मै आम भेजता हू, उनके यहा आमो की कोई कमी तो है नही। वह स्नेहवश आम ले लेते हे। उस रिश्तेदार के वच्चो को तो शायद आम के मौसम-भर भी आम न मिले हो और मिले भी हो तो एक-आध वार और वह भी वहुत ही घटिया। और मैने भी उनके यहा कभी आम नही भेजे। इस विचार ने मेरे मस्तिष्क मे ऐसी उथल-

पुथल पैदा की कि इसके मनोवैज्ञानिक तथा दूसरे कारणो पर सोचता रहा। मोटर अपनी रफ्तार से चली जा रही थी। बहुत दूर जाने के बाद मैंने ड्राइवर से कहा कि मोटर लौटाओ, अमुक आदमी के यहा चलना है।

"थोडी देर मे मोटर बडाबाजार की एक सकरी गली मे घुसी और एक पुराने मकान के दरवाजे पर जा खडी हुई। तीन-चार अधनगे, कृशकाय बच्चे दरवाजे के बाहर खडे थे। उन्होने कौतूहल की दृष्टि से मोटर को और मुझको देखा। दो-एक ने भीतर जाकर अपने पिता को खबर दी कि अमुकजी आये है। सयोगवश वह घर पर ही थे और मुझे लेने बाहर आये। उनके साथ जब मैं कोठरी मे गया तो देखा कि उनकी स्त्री टाट का एक टुकडा बिछाकर मेरे लिए बैठने की जगह तैयार कर रही है। स्त्री बेचारी टाट बिछाने मे जल्दी कर रही थी कि कही मैं उसकी फटी साडी न देख लू। उन्होने बडे आदर के साथ मुझे उस टाट के आसन पर बैठाया। कोठरी मे सील की बू तो थी ही, आसपास की कोठरियो से आकर धुआ भी भर गया था। मकान के सहन मे जैसे सूर्य भगवान का प्रवेश-निषेध था। वही आइसक्रीम बेचने की गाडियो का कारखाना भी था। गाडिया जहा-तहा अस्त-व्यस्त पडी हुई थी। उनके बच्चे भी आ गये। जो बाहर गये थे, वे नही आ सके।

"कोठरी का किराया पूछने पर उन्होने बताया कि तैंतीस रुपये लगता है। बातो-ही-बातो मे पता चला कि वे एक जगह डेढ सौ रुपये मासिक पर नौकरी करते है। सुबह ७ बजे जाते है और ११ बजे लौटते है। भोजन करके १२ बजे फिर चले जाते है और शाम को ७ बजे लौटते है। भोजन करने के बाद रात मे फिर जाते है और १० बजे लौटते है। बच्चो की पढाई-लिखाई के बारे मे बात करने पर कहा कि एक लडका स्कूल जाता है, जिसकी फीस सात रुपये महीना लगती है। बाकी बच्चे यहा सटरगश्ती करते फिरते है। उन्हे स्कूल भेजने की बात हुई तो कहने लगे कि स्कूल की फीस और किताबो के दाम कहा से आयें? तैंतीस रुपये भाडे का, सात रुपया एक लडके की फीस का,

पचपन रुपये राशन के अन्न का, फिर दाल, मसाला, लकडी आदि मे जो खर्च होता, वह सब पूरा नही पडता। कपडा, जूता, तेल, साबुन आदि से हमारा कोई सबध नही। देश से आये सात महीने हुए तबसे हमने कपडा या दूसरी कोई चीज नही खरीदी, सिवा खाने की चीजो के। हमारे सामने तो सबसे बडा सवाल पेट का है। लिखाई-पढाई तथा दूसरी चीजो के बारे मे सोचने-करने का हमारा अधिकार ही नही है। इस एक लडके ने देश मे नि शुल्क थोडा पढ लिया था सो यहा भी स्कूल जाने का आग्रह करने लगा। हमने किसी तरह उसे स्कूल भेज दिया है, पर हमारी कोशिश रहती है कि यह भी कुछ काम करे और बीस-तीस रुपये भी लाने लगे तो हम भर-पेट खा सके। मैंने कहा कि आप इन बच्चो को देश मे क्यो नही रखते तो उनकी स्त्री कहने लगी कि हमारी तो देश मे भी यही हालत है। इसीलिए सोचा कि दु ख-सुख जो है सो तो है ही, साथ रहकर बिताने से कुछ तो सहारा रहेगा।

डेढ सौ रुपये मे तैंतीस रुपये किराया और सात रुपया फीस देने के बाद एक सौ दस रुपये मे दस आदमी कैसे गुजर करते है, यह देखकर मैं स्तम्भित रह गया। हम समाज मे शिक्षा, सस्कृति, स्वास्थ्य आदि की बात करनेवाले लोग सोच नही सकते कि वस्तुस्थिति क्या है, क्योकि हमारा उस स्थिति से वास्तविक सबध नही है। उपर्युक्त स्थिति के परिवार के बच्चे कैसे स्वस्थ रह सकते है, कैसे उन्हे शिक्षित किया जा सकता है और कैसे उन्हे नागरिकता की प्रारभिक बाते बताई जा सकती हैं? वे जैसे तपेदिक के कीडे हैं, समाज मे अनायास फैलते जाते है। ऐसे लोग तपेदिक-जैसी बीमारी हो जाने पर भी सुबह सात बजे से रात के दस बजे तक काम करने के लिए बाध्य हैं, ताकि आठ-दस प्राणियो को जिला सकें। वे बीमारी को भी छिपाते हें कि कही मालिक को पता न लग जाय और उन्हे निकाल न दे।"

मित्र की उपर्युक्त बाते मुझे दु खित कर रही थी। मैंने प्रश्न किया, "सबसे छोटे बच्चे की उम्र क्या होगी?"

"तीन वर्ष।"

"स्त्री की उम्र क्या है?"

"होगी कोई पैंतीस वर्ष । बच्चे तो और भी हो सकते हैं, क्योंकि गरीब के पास अपने मनोरंजन के लिए आज सेक्स के सिवा और कोई चीज है ही नही ।"

"तुमने उनसे जन्म-निरोध की बात क्यो नही कही ?"

मेरे मित्र एक व्यग्य-भरी मुस्कान के साथ बोले, "रे पगले, यह सब तो हमारे-तुम्हारे लिए है । जिनके बीमारी है, उनकी दवा कौन करता है ? मैं उनसे जन्म-निरोध की बात कहता ! पहले तो वह यह मानने को तैयार ही नही कि ऐसा भी कोई उपाय हो सकता है, जिससे बच्चा होना रुक जाय । वह तो यह मानते है कि ईश्वर ने जिसके नसीब मे जितने बच्चे लिखे हैं, लाख प्रयत्न करने पर भी उतने अवश्य होगे । फिर बच्चो का होना तो बुरा नही । जब भगवान् कृपा करते है, तो बच्चे होते हैं । मेरे एक मुसलमान मित्र है, जो अपने बच्चो की सख्या गिनकर बताया करते हैं, क्योंकि उनके तेरह बच्चे तो जीवित है । इनके अलावा होते रहते है और मरते भी रहते हैं । जन्म-निरोध की बात करने पर एक दिन उन्होंने कहा कि भाईसाहब, जब खुदा भेजता है, तो हम कौन होते है रोकनेवाले ? सच पूछो तो यह बीमारी इतनी गहरी है कि इसका इलाज नही सूझ रहा है । जबसे मैं उस परिवार से मिलकर आया हू, तबसे मेरे मन मे एक अजीब हलचल मची हुई है । मेरा मन और मस्तिष्क दोनो अनेकानेक प्रश्नो और समस्याओं से घिरे हुए हैं । मैं सोचता हू, ऐसे अनेक परिवारो की इससे भी अधिक जटिल समस्याओं का समाधान हो और कैसे हो ? उन बच्चो की शकल और उस कोठरी का दृश्य मेरी आखो के सामने बराबर घूम रहा है ।"

मैंने कहा, "तुम ठीक कहते हो, और आज हमारे देश मे ऐसी स्थिति न जाने कितनो की है, पर इसका यदि कोई उपाय है, तो क्रान्ति ही है । यो व्यक्ति-विशेष या एक-एक व्यक्ति के लिए चिन्ता करने से क्या हो सकता है ? तुमने जिस परिवार का वर्णन किया है, ऐसे परिवारो की सृष्टि यहा रोज होती जा रही है । समस्या का इलाज तो दूर रहा, आज तो समस्या और भी उलझती जा रही है । तुम देखते हो कि आज की स्थिति और व्यवस्था मे धनी का धन बढ़ रहा है और गरीब

की गरीबी बढ रही है । एक तरफ तो ढेर लगता जा रहा है और दूसरी तरफ का गढा और भी गहरा होता जा रहा है । समता का स्थान विषमता ले रही है । ऐसी स्थिति मे ज्यादा काम करने की जरूरत है, जिससे हम समाज को सुखी और समृद्ध बना सके, समता ला सके । यो दुखी होने या चिन्ता करने से तो काम नही चलेगा । आज समाज की रचना और संचालन जिन सिद्धान्तो से, जिस नीति से, जिन तत्त्वो और विचारो से हो रहा है, उनको ही शायद बदलने की जरूरत है और उनको बदलने के लिए हमे कार्यशील, योग्य, ईमानदार, परिश्रमी आदमी चाहिए । जहा-जहा ऐसे आदमी मिले, उनकी खोज होनी चाहिए, सगठन होना चाहिए, कार्यक्रम होना चाहिए । तभी इस स्थिति को बदलकर नये समाज की रचना की जा सकती है । व्यक्ति की स्थिति से हम समाज की स्थिति का अन्दाज कर सकते है, पर उस एक के सुधार से समस्या का समाधान नही हो सकता ।"

मित्र बोले, "भई, यह तो ठीक ही है । तुम कहते हो, वैसा हम तथा हमारे जैसे दूसरे लोग सोचते रहे ही है, पर हालत तो यह है कि मर्ज बढता गया, ज्यो-ज्यो दवा की ।"

"यह कैसे कहते हो ? आज के विचारशील व्यक्ति, चाहे वे किसी भी विचार के हो, यहातक कि धनी वर्ग के भी समझने-सोचनेवाले आदमी, यह मानने लगे है कि आज की हालत मे बडा परिवर्तन होकर रहेगा, यह व्यवस्था जो आज कायम है, टिक नही सकती ।"

इसपर मित्र बोले, "फिर भी एक बडा भाग ऐसा है, जो अपने साधनो द्वारा इस व्यवस्था को कायम रखने की कोशिश कर रहा है और सोच रहा है कि कम-से-कम कुछ दिन तो हम इसे बचाये रख ही सकेगे ।"

मैंने कहा, "इसमे अधीर होने से काम नही चलता । हमारी लगन और हमारे साधन जितने ज्यादा होगे, सफलता उतनी ही नजदीक आती जायगी । साथ ही, यह निश्चय मानना चाहिए कि समय बडी तेजी से बदल रहा है । देखते-देखते राजे-महाराजे और जमीदार मिट गये, मिट रहे हैं, तो अब यह सेठ-साहूकार भी मिटनेवाले है और तुम जिस परिवार को

देख आये हो इससे भी ज्यादा जो सर्वहारा है, जिसके पास कुछ नही है, उसका उद्धार होनेवाला है। हमे काम वही करना चाहिए—साहित्य के द्वारा, संगठनों के द्वारा—कि वह ऐसे समाज की रचना मे सहायक हो सके, जिसमे वैसे दृश्य रह न जाय, जैसा कि तुम देख आये हो।"

१ : अंधेरे का कैदी

भाद्र का महीना था। रात के करीब ११ बजे होगे। प्रेसिडेन्सी-जेल के यूरोपियन वार्ड मे मैं अपनी कोठरी मे बन्द था। खिडकी से मुझे आकाश अच्छी तरह तो नही दिखलाई पडता था, पर जितना भी दिखलाई पडता था, काले बादलो से घिरा था। थोडी देर मे बूंदे पडने लगी। किसी अस्थिर-चित्त मनुष्य के विचारो या क्षण-क्षण मे होने और टूटनेवाली मित्रता की तरह विद्युत् अपना प्रकाश मेरी इस अंधेरी कोठरी मे फैलाने लगी। मै पडा-पडा तरह-तरह के विचारो मे निमग्न था, क्योकि नीद नही आ रही थी।

सहसा एक सुन्दर गाने की आवाज़ सुनाई पडी। यह गान कविवर रवीन्द्रनाथ का निम्न पद था

मेघेर पर मेघ जमेछे आंधार करे आसे,
आमाय केनो बसिए राखो एका द्वारेर पासे।

यह गाना मुझे इतना सुन्दर लगा कि मैं अपने विचारो की उलझन से निकलकर इसके राग और भावो मे अपने-आपको भूल गया। गान समाप्त होने पर मैं सोचने लगा कि जेल मे इस आधी रात को गाने-वाला कौन है? इस वार्ड मे हम दस राजनैतिक कैदी हैं। उनमे से तो कोई गा नही रहा है और दूसरा वार्ड यहा से काफी दूर है। तब फिर आखिर यह कौन गा रहा है?

पास ही मे एक हाजत थी, जिसमे करीब तीन-साढे तीन सौ आद-मियो को भेड-बकरियो की तरह शाम को छ बजे बन्द कर दिया जाता

था। मैं जब कभी किसी काम से वार्ड से वाहर निकलता था, तो इन मनुष्य तनधारी पशुओ को देखता था। उनकी हालत देखकर सहसा यह विश्वास कर लेने को जी नही चाहता था कि हाजत के इन वनमानुषो मे किसीने यह गाना गाया है। वर्षा से थोडी ठडक-सी हो गई थी, अत गानेवाले की वात सोचते-सोचते ही न जाने कव मुझे नीद आ गई।

सुवह उठते ही मेरे मन मे यह प्रश्न जग उठा कि रात मे वह गान किसने गाया था? बगल की कोठरी के भाई से वात की तो उत्तर मिला कि वे तो रात-भर खर्राटे लेते रहे। उन्हे तो यह भी पता नही कि कव वादल छाये और कव वर्षा हुई। किसी काम के वहाने मैं वार्ड से वाहर निकला। देखा कि पास मे ही सैकडो अधनगे मैले-कुचैले लोग सुवह का नाश्ता कर रहे है। नाश्ता भी उनका वस था, सो ही था। जेल मे सुवह के नाश्ते मे कैदियो को एक लपसी दी जाती है, जिसमे चावल, नमक और कुछ मसाले मिले होते है तथा पानी की वहुतायत रहती है। मैंने एक से पूछा, "भाई, तुम लोगो मे से किसने रात को इतना अच्छा गाना गाया था?"

वह बोला, "वावूजी, कौन-सा गाना? हम गाने की वात क्या जानें!"

मैं सोचने लगा, मैं भी कैसा पागल हूं, जो इस तरह की वात करता हू।

दस-पाच दिन गुजर गये, पर मेरे मन मे यह चाह वनी रही कि उस गानेवाले का पता लगता, तो अच्छा था। एक दिन शाम को पाच वजे मेरी मुलाकात थी। हम लोगो को पन्द्रह दिन मे एक वार घर के लोगो से या जिनसे हमारा खास सम्वन्ध हो और पुलिस को उनसे मिलने देने मे कोई आपत्ति न हो उनसे हमारी मुलाकात कराई जाती थी। मैं जब मुलाकात करके लौट रहा था, तो उसी हाजत के पास एक आदमी वैठा अपनी थाली पर हाथ से कुछ वजाने का-सा प्रयत्न करता हुआ दिखलाई पडा। मेरे मन मे उस रात के गाने की स्मृति जाग उठी। मैंने उसके पास जाकर पूछा, "क्या वजा रहे हो?"

वह सहमा गया और वोला, "वावूजी, कुछ नही वजाता।"

मैंने कहा, "मालूम पडता है, तुम गाना जानते हो।

"नही बाबूजी, योही जरा कभी ऊ-आ कर लिया करता हू।"

"पाच-छ दिन पहले रात मे मैंने एक बहुत सुन्दर गाना सुना था। पता नही, वह किसने गाया ? मैं उस आदमी को खोज रहा हूं। कौन जाने, किस वार्ड मे है।"

"यहा हम तीनसौ आदमी बन्द होते है। रात मे काफी शोर होता है। नीद नही आती, तब कई लोग योही कुछ गाया करते है। आपने वही सुना होगा। दूसरे वार्ड मे से गाया हुआ गाना यहा क्या सुनाई पडेगा ?"

"तुम यहा कितने दिनो से हो ?"

"दो वर्ष हो रहे है।"

"कितनी सजा है तुम्हारी ?"

"सजा कहा ? ब्लैक-आउट मे (अंधेरे का कैदी) हू।"

"ओह, तुम ब्लैक-आउट हो ! तो पहले कई बार सजा पा चुके हो न ?"

"पहले की बात मत पूछिये, बाबूजी ! हा, सजा तो काटी ही है।"

उसकी आवाज मे दर्द था। वह भर्राई हुई थी। वह आदमी भी जरा दूसरो से भला-सा लगता था। मैंने कहा, "तुमको यहा कोई तकलीफ तो नही है !"

"तकलीफ किस बात की, बाबूजी ! हम चोर जो ठहरे ! हमारा तो यह घर ही है। एक बीडी हो, तो कृपा करें।"

"भाई, बीडी तो मैं नही पीता।"

"तो कोई साबुन का टुकडा हो, तो- "

"हा, भीतर वार्ड मे आना, साबुन जरूर मिलेगा।"

"भीतर बाबूजी, सिपाही नही जाने देते। यदि रिपोर्ट कर दें तो यहा बेडी लग जायगी।"

"अच्छा, यदि हम तुम्हे अपने वार्ड मे काम करने के लिए ले ले, तब ?"

"तब तो बडी कृपा होगी, बाबूजी !"

"देखो भाई, हम सब है राजनैतिक बन्दी और उसमे भी सिक्यूरिटी-प्रिजनर । हम लोगो के पास बहुत-सी चीजे भी है । कीमती चीजे भी हैं । तुम कही चोरी कर लो, तब ? तुम लोगो का क्या भरोसा !"

"हा, हमारा विश्वास कौन करता है !"—एक लम्बी सास खीचते हुए उसने कहा ।

मैंने कहा, "अच्छा, मैं जेलर से बात करूगा । तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम धीरेन्द्रदास है ।"

"और नम्बर ?"

"नम्बर ३४५-वी है ।"

मैं अपने वार्ड मे आ गया । सोचने लगा, आदमी आदमी मे इतना फर्क क्यो है ? क्या यह फर्क होना जरूरी है ? क्या यह स्वय निर्मित है ? नही, यह फर्क जबरदस्त आदमी ने अपनी सुविधा के लिए बनाया है । अपने स्वार्थ के लिए उसने कमजोर आदमी पैदा किये है । यह फर्क एक बहुत लम्बे समय से चला आ रहा है। क्या यह बराबर इसी तरह चलता रहेगा ? यही सोचता-सोचता मै अपने कार्यो मे लग गया । दूसरे दिन जेलर से कहकर हम लोगो ने उस आदमी को अपना काम करने के लिए ले लिया । दो-चार दिन तो उसको काम से परिचय करने मे लगे, फिर वह सब काम बडी सफाई और चतुराई से करने लगा । हमे कभी किसी तरह की शिकायत करने का मौका उसने नही दिया । यदि ऐसा आदमी हम शहर मे नौकर रखे, तो इस महगी के जमाने मे बीस रुपया मासिक और खाना तो देना ही पडे । और आजकल खाने पर भी कम-से-कम पौन-एक रुपया तो रोज खर्च होना ही है । पर यह आदमी रात-दिन कडी मेहनत और होशियारी से काम करता है और सिवा दो-चार बीडियो के इसकी कोई माग नही । पर यह कैदी जो है, चोर जो है, कौन इसे काम देगा, कौन इसे अपने घर मे रखेगा ? बोलबाला है आज इस समाज-रचना का, जिसने हम-जैसे सफेदपोशो के लिए सब सुभीते कर रखे है । शरीर से कोई परिश्रम करना हम पसन्द नही करते—पसन्द ही नही, इस परिश्रम करने मे अपनी हेटी भी समझते है और

साथ ही 'कल्चर' की कमी भी।

एक दिन हम लोगो का रसोइया बीमार पड गया, तो धीरेन्द्र ने कहा, "बाबूजी, क्या खाना बना दू ?"

"तुम खाना कैसे बनाओगे ? तुम तो खाना बनाना जानते नही।"

"नही बाबूजी, मै जानता हू। एक दिन मुझसे बनवाकर तो देखिये।"

और उस दिन धीरेन्द्र ने जो खाना बनाया वह उस रसोइये के खाने से कही अच्छा था। उसने एक-दो चीजे नई भी बनाई थी। अब तो वह हम लोगो का खाना भी बनाने लगा और नित्य एक-न-एक नई चोज बनाता, जो लोगो को बहुत पसन्द भी होती। मैं सोचता कि यह आदमी पीर-बावर्ची-भिश्ती-खर बडा अच्छा मिला। यदि यह आदमी किसी तरह इस ब्लैक-आउट से छूटे, तो इसको अपने घर पर रख ले। यह चोर जरूर है, पर यदि सोचकर देखा जाय, तो इसका इसमे बहुत कम कसूर है। बेचारा क्या करे ? जब इसका कोई विश्वास ही नही करता, तो पेट के गढे को भरने के लिए कुछ-न-कुछ करेगा ही। आज की समाज-रचना ने न मालूम कितनो को अपना पतन करने के लिए विवश किया है।

अब धीरेन को पहले की अपेक्षा काम कम करना पडता था, पर कभी खुश नही दीख पडता। उसे देखकर मै बराबर यही सोचा करता कि इस आदमी के मन मे कोई गम-दर्द जरूर है। एक दिन मैने उससे पूछा, "धीरेन, तुम्हे यहा कोई तकलीफ तो नही है ?"

"नही बाबूजी, यहा तो बहुत आराम है। आप लोगो की सेवा का मौका मिलता है। आप लोग देश के लिए तकलीफ सहते हैं। हम तो चोर है। आपका साथ मिल गया, यही क्या हमारे लिए कम है। यहा भला तकलीफ किस बात की ?"

"तो तुम इतने सुस्त क्यो रहते हो ? तुमको कभी हसते नही देखा। बताओ भाई, यदि हमसे कुछ हो सकेगा, तो तुम्हारे लिए करने की कोशिश करेगे।"

इतना सुनकर वह रोने लगा। कुछ देर बाद सभला तो मैने आश्वासन के स्वर मे पूछा, "यह क्या बात है ?"

"बात कुछ नही है, बाबूजी, मैं सदा से ऐसा नही था।"

यह सुनकर उससे पिछला हाल जानने की मेरी उत्कण्ठा और भी बढी और मैंने उससे पूछा, "अच्छा, तुम्हारी कहानी क्या है?"

"क्या फायदा है उसे कहने मे? योही आदमी किसी अज्ञात के इशारे से क्या से क्या हो जाता है।"

"नही, तुम इस फन्दे मे कैसे फस गये? तुम तो थोडा लिखना-पढना भी जानते हो, मेहनती भी हो, काम करने का शऊर भी है, फिर तुम्हारा यह हाल कैसे हुआ?"

"अच्छा, जब आप पूछते ही है, तो मैं कहे देता हूं। मेदिनीपुर जिले के सूताहाटा गाव मे मेरा घर है। मा-बाप है, दो बहने है, जगह-जमीन है, गाय-बैल है। अच्छी खाती-पीती अवस्था है, किसी बात की कमी नही। पिता-माता का इकलौता पुत्र और वह भी बडी उम्र मे पैदा होने के कारण मैं बहुत लाड-प्यार से पाला गया। गाव के स्कूल मे मिडिल तक पढा भी। आगे पढने की खूब इच्छा थी, पर हमारे गाव मे इससे आगे की पढाई नही होती थी और शहर के स्कूल मे भेजने के लिए माता-पिता राजी नही हुए। मैने बहुत कोशिश की, पर मा मुझे अपने से अलग करना नही चाहती थी। फलत. मैं घर की खेती-बारी का काम देखने लगा।"

वह जरा चुप हुआ और ठिठका। उसके चेहरे पर किसी विषाद-भरे भाव की रेखाए चमकने लगी। मैंने पूछा, "क्यो, चुप कैसे हो गये?"

"बाबूजी, और बाते आज नही, किसी दूसरे दिन बताऊंगा।"

"नही भाई, अब तो मेरी उत्सुकता और बढ गई है। कहो—कहो, घबराना नही चाहिए।"

वह बोलना ही चाहता था कि किसीने पुकारा, "बीरेन!" और वह उठकर चला गया। देखा, सिपाही आया है और कह रहा है कि उसकी दूसरे वार्ड मे बदली हो गई है। सुनते ही बेचारा सहम गया। मेरे पास आकर बोला, "बाबूजी, मुझे आठ नम्बर खाते मे जाना पडेगा।"

"क्यो?"

"सिपाही आया है। जेलरसाहब का हुकुम है।"

मैंने सिपाही से कहा, "भाई, इसे यही रहने दो। हम लोग जेलर से बात कर लेंगे।"

सिपाही ने कहा, "बाबूजी, हम क्या कर सकते है? एक बार तो जाना ही पडेगा। फिर आप जेलरसाहब से बात करके इसको वापस बुला सकते है।"

धीरेन बोला, "बाबूजी, दुर्भाग्य मेरा साथ नही छोडता। आपकी कोशिश व्यर्थ है। मुझे उसके भरोसे छोड दीजिए। आप जैसे लोगो के के साथ मै कैसे रह सकता हू।"

दूसरे दिन जब जेलर आया, तो हम लोगो ने उससे धीरेन को हमारे पास रहने देने के लिए कहा, पर वह राजी नही हुआ। कहने लगा, "बडे जमादार ने उसकी यहापर रहने की शिकायत की है। मैं उसको यहा नही रख सकता।"

जेल मे एक वार्ड और दूसरे वार्ड मे ४०-५० गज का ही फासला होता है, पर वह फासला भी कितना अधिक है, इसे भुक्तभोगी ही जान सकता है। इसलिए इसके बाद धीरेन मुझसे न मिला और न मै ही कभी धीरेन से। रात को जब नीद टूट जाती या कम आती तो मन मे तरह-तरह के विचार उठते। उनमे धीरेन की कहानी को लेकर अनेक कल्पनाए तथा हम लोगो से विदा होते समय की उसकी आकृति मन और आखो मे घूमा करती। आज भी उसकी पूरी कहानी जानने की प्रबल इच्छा है, और वह क्या हो सकती है, इस सम्बन्ध मे नाना कल्पनाए उठा करती है। धीरेन ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य किसी अज्ञात के इशारे से क्या से क्या हो जाता है।

२ : रामलाल

नाटे कद का एकहरा बदन और काला रग, एक आख मे फुलडी, सिर पर राजनैतिक बन्दियो के सुबह के नाश्ते का बोझ और हाथ मे चाय की पतीली लिये उसे मैंने आते देखा। नाश्ता देकर वह चलता बना। थोडी देर बाद फिर किसी काम से आया, ग्यारह बजे खाना लेकर आया और फिर शाम को खाना लाया। सब मिलाकर हमारी हाजत मे वह सात-आठ बार आया होगा। इसी तरह वह बराबर आया करता।

तीन-चार दिन बाद हम कुछ आदमी बडी हाजत से बदलकर यूरोपियन वार्ड मे लाये गये। यही हम लोगो का खाना बनता और यही से वह हम लोगो की चीजें लेकर बडी हाजत मे दिन मे कई बार जाया करता। अब तो उसको हम लोगो के सब काम करने का भार सौंपा गया। हम लोग कुल दस आदमी थे और वहा दस के ही रहने की जगह थी। इसमे से तीन आदमी निरामिषभोजी थे, इसलिए उनका इन्तजाम अलग था, बाकी सात की सेवा का भार उसपर पडा। रसोई बनानेवाले और भी आदमी थे, पर इन सात आदमियो के सारे काम उसे ही सौंपे गये। उसको यहा के लोगो मे से कोई तो 'काना' नाम से पुकारता और कोई 'बुड्ढा' कहकर। उसके साथी कैदी भी उसे इन्ही नामो से पुकारते। पर उसको चाहे जिस नाम से पुकारो, वह वहा आता था।

मुझे उसका 'काना' नाम बहुत ही बुरा लगा और उसे 'बुड्ढा' कहकर पुकारना भी ठीक नही जचा, इसलिए एक दिन मैंने उससे पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?

वह हँसा और बोला, "जी, समझ लीजिए। 'काना' भी कहते है 'बुड्ढा' भी कहते हैं।"

"नही, यह तो तुम्हारी उम्र से या आख की वजह से कहते है। तुम्हारा असली नाम क्या है ?"

"नाम ? नाम तो रामलाल है।"

"कहा के हो ?"

"यही का ।"

"नही, तुम्हारा देश कहा है ?"

"देश तो उडीसा है ।"

"तुम्हारे घर पर कौन-कौन है ?"

"एक भौजाई है और एक उसका बेटा ।"

"उसका बेटा कितना बडा है ? क्या तुमने विवाह नही किया ?"

"मैं विवाह कैसे करता ? भौजाई तो बेचारी विधवा है ।"

"तो इससे क्या ? तुमने विवाह क्यो नही किया ?"

"नही, यह मेरा धर्म नही । उसको तथा उसके बेटे को खाना देना मेरा धर्म है । मै विवाह करता, तब तो बस मैं उनको भूल ही जाता ।"

"तुम्हारे भाई को मरे कितने दिन हुए ?"

"पन्द्रह-बीस वर्ष हो गये होगे ।"

"उसका लडका कितना बडा है ?"

"होगा कोई ग्यारह-बारह साल का ।"

"तो क्या वह तुम्हारे भाई के मरने के बाद पैदा हुआ ?"

"राम-राम, वह बहुत अच्छी है । ऐसी बात मुह से मत निकालिए ।"

"तुम तो कहते हो, भाई को मरे पन्द्रह-बीस वर्ष हुए होगे और लडका ग्यारह-बारह साल का है । तब भाई को मरे इतने वर्ष नही हुए होगे । तुमने उससे विवाह क्यो नही कर लिया ? तुम लोगो मे तो ऐसे विवाह होते है ।"

"उससे विवाह करता ? वह तो मा है, मा !"

"अच्छा, तुम्हारी उम्र कितनी है ?"

"तीन कुडी[1] से ज्यादा होगी ।"

मैंने मजाक किया, "चार-पाच कुडी होगी ।"

---

१. कोडी (अर्थात् २०) का उच्चारण बगाल-उड़ीसा में 'कुड़ी' ही किया जाता है ।

"पाच कुडी तो पूरे सौ होते है। इतनी नही। चार कुडी तो ज्यादा हो भी सकती है।"

रामलाल सुवह छ वजे आता है और शाम को छ वजे चला जाता है। इन वारह घटो मे वह कभी वैठता नही। जिस तरह तेली वैल को घानी मे जोत देता है और उसकी आखे वाध देता है, फिर वह फिरता ही रहता है, उसी तरह रामलाल भी है। पर उसको भौजाई की रक्षा मे धर्म मालूम होता है, न जाने यह क्या वात है।

जेल मे दो हजार से ज्यादा ही कैदी है। इनमे शायद ही कोई हो, जो तमाखू-वीडी न खाता-पीता हो। और यहा तमाखू पीना गुनाह है।

रामलाल भी तमाखू खाता है और इतनी खाता है, जितनी मिल सके। फिर भी यदि उसके पास से कोई मागता है, तो वह यह खयाल नही करता कि जव उसे जरूरत होगी, तो कहा से आयगी। वह मागनेवालो को दे ही देता है। इस मामले मे वह कर्ण से कम नही है।

रामलाल यह खयाल नही करता कि अमुक चीज अमुक आदमी की है। वह जिसको जिस चीज की जरूरत हो, दे देता है। जव उससे पूछा जाता है कि अमुक चीज जो वहा थी, कहा गई, तो वह कहता है कि वह तो अमुक को दे दी। उससे पूछा जाय कि विना हमसे पूछे क्यो दे दी, तो वह कहता है कि उसने मागी थी, उसे जरूरत थी, इसीलिए दे दी। यदि उससे कहा जाय कि हमे भी उसकी जरूरत है, तो वह कहता है, तव तो वडी 'मुश्किल की वात' है। यह 'मुश्किल की वात' उसका तकिया-कलाम-सी हो गई है। कोई उसपर नाराज हो, वह वुरा नही मानता, और खुश हो, तो भी उसपर कोई खास असर नही होता।

१० फरवरी, १९४३ को जव गाधीजी ने २१ दिन का उपवास शुरू किया तो रामलाल पूछा करता, "गाधी महात्मा की क्या खवर आई है?" जव महात्माजी की अवस्था खराव होने लगी और हम लोग चिन्तित हुए, तो उसने कहा, "गाधी महात्मा तो भगवान है, उनका कुछ विगडेगा नही। वह अच्छे हो जायगे। उनको कौन मार सकता है?" लेकिन वावजूद इस आत्मविश्वास के उसको गाधीजी की खवर जानने

की उत्सुकता बराबर रहती थी।

सात आदमियो की कोठरियो की सफाई करना, सामने का वरामदा साफ करना, किसीको गरम पानी-नीबू, तो किसीको ठडा पानी, किसी को चाय, तो किसीको दूध, किसीको कुछ, तो किसीको कुछ—यह सब वह सुबह से शाम तक करता रहता है। इसके अलावा सबके कपडे धोता है, जूठे बरतन साफ करता है, नहाने के लिए ठडा या गरम पानी देता है। मतलब यह कि वह कभी जरा भी विश्राम करते नही देखा गया। भोला इतना है कि उसे जो कोई जैसा कहे, सब सच ही मानता है। लगभग सभी उससे मजाक किया करते है। कभी कोई आदमी बीमार होता है, तो वह उसकी बेहद सेवा-सुश्रूषा करता है। वह साथी कैदियो के सुख और सुविधा का सदा खयाल रखता है। यदि हम लोग कभी उसे कोई चीज देते, वह साथी कैदियो को देकर खाता तथा उनकी तकलीफो के लिए हम लोगो से सिफारिश भी करता। उसे अपनी उतनी फिक्र नही, जितनी दूसरो की।

एक दिन हमारे वार्ड के राजबन्दियो ने दूसरे वार्ड के कुछ बन्दियो को दावत दी। इससे रामलाल का काम बहुत बढ गया—पहले ही वह कौन कम था। दिन-भर वह खूब दौडता रहा। शाम को खाकर दूसरे वार्ड मे बन्द होने गया और वहा बीमार पड गया। उसे एक कै हुई और कुछ दस्त आये। सुबह होते-होते उसे बुखार चढ आया। पर ज्योही वह हमारे वार्ड मे आया, तो फिर उसी तरह काम करने लगा। मैने उससे कहा, "तुम यह क्या करते हो ? कुछ विश्राम करो।" बोला, "अच्छा, विश्राम करूगा।"

एक जगह वह सो गया और अपने-आप बात करने लगा, "विश्राम करो, बस विश्राम करो, पर विश्राम कैसा ? विश्राम करने से तो फिर विश्राम ही हो जायगा। नही, मैं मूर्ख हू। मुझे विश्राम नही, काम करना चाहिए। रात मे अच्छा लगा, ज्यादा खा लिया। मूर्ख हो गया, अब फिर मूर्ख हू, विश्राम जो करता हूं। नही, मुझे काम करना चाहिए। काम करने से आदमी ठीक रहता है।"

थोडी देर बाद देखा, तो वह अपना सारा काम फिर सदा की भाति

कर रहा है। यह रामलाल 'शीतोष्णसुखदु:खदा' है, 'मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयो' है और है 'निर्ममो निरहकार।' यदि हम सफेदपोश लोग सोचकर देखे, तो उसने किसका क्या बिगाडा है ? वह ससार से क्या लेता है ? उसकी जरूरते कितनी है ? वह पूरा आत्मत्यागी है। दिन-भर मेहनत करता है और सिर्फ पेट भरने के सिवा उसकी कोई माग नही। वह दूसरो को कितना अधिक देता है और स्वय कितना कम लेता है, यह सोचने की बात है।

३ : दत्तात्रेय

बात तीस वर्ष से भी ज्यादा पुरानी है। मैं खादी भडार मे बैठा काम कर रहा था कि एक लडका आया। उम्र शायद सोलह-सत्रह की रही होगी। बोला, "एक रुपया दीजिए।" मैंने उसकी ओर गौर से देखा और रुपया दे दिया। वह चला गया, कुछ नही बोला। सात-आठ दिन बाद फिर आया और बोला, "एक रुपया दीजिए।" मैंने फिर उसकी ओर देखा, एक मिनट उसको समझने की कोशिश की—मन-ही-मन—और एक रुपया दे दिया। सात-आठ दिन बाद वह लडका फिर आया। चुप, कुछ बोला नही, मैंने पूछा, "क्या बात है ?" वह बहुत उदास था, कमजोर तो पहले से ही था और भी कमजोर दुबला-पतला निहायत थका-सा निराश और कैसा ही लग रहा था। मैंने उससे जरा ज्यादा सहानुभूति के स्वर मे पूछा, "क्या बात है ?"

"मैंने आपसे दो बार एक-एक रुपया मागा। आपने दे दिया। मैंने पहली बार ही सोचा था कि इस रुपये की कोई चीज खरीदकर उसकी बिक्री करके जो दो-चार पैसे मिलेंगे, उनसे खा लूगा और काम चला लूगा। पर वह हुआ नही, रुपया खत्म हो गया, खाने मे। फिर मागने करके आया और माग लिया। मिलने पर सोचा, इस बार तो निश्चय

ही काम चला लूगा, पर वह नही हो सका। रुपया खत्म हो गया। अब मैं आपसे मागने नही आया हू, न लेना चाहता हू। आप दे तब भी नही। क्या करू, कैसे करू, यह बताये या कोई काम दे।"

भाई मूलचन्दजी अग्रवाल के पास भेज दिया और पच्चीस 'विश्वमित्र' बेचने के लिए देने को लिख दिया। उसने बहुत कोशिश की, पर पन्द्रह-सोलह से ज्यादा नही बेच सका। बाकी लौटाने के लिए लिखकर जितना वह मागे उतना 'विश्वमित्र' उसको दे और न बिकने पर लौटा ले, ऐसी बात हो गई। उन दिनो 'विश्वमित्र' का दाम दो पैसा था और एक बेचने पर आधा पैसा कमीशन मिलता। उसके रहने और खाने-पीने का प्रबन्ध कर दिया। 'विश्वमित्र' की बिक्री से वह दस-बारह पैसा कमाता। शाम को कैंची, सूई, तागा आदि बेचता, पर चार-पाच आने से ज्यादा रोजाना नही कमा पाता। खाने-पीने का इन्तजाम था, पर वह खुश नही था। पच्चीस रुपये महीने पर एक प्रेस मे उसकी नौकरी लगी। सुबह आठ बजे जाता, रात मे नौ-दस बजे आता। बहुत ज्यादा परिश्रम करना पडता उसे। वह कमजोर था और भी कमजोर होता जा रहा था। मै उसको देखता तो कष्ट होता, पर वह किसी प्रकार की शिकायत या अन्य बात न करता। अपना काम चुपचाप बडी सच्चाई और नियमितता से करता रहता।

उन दिनो शुद्ध खादी भडार की एक शाखा मुरादाबाद मे थी। वहा खादी-उत्पादन का तथा आश्रम का काम भाई महावीरप्रसादजी पोद्दार चलाते थे। एक भडार दिल्ली मे हम लोग उसकी ओर से चलाते थे। भाई पोद्दारजी कलकत्ता आये तब मैने उनसे कहा कि पोद्दारजी, एक लडका मेरे पास है। वह मुझे बहुत भला लगता है, पर कष्ट मे है। किसी प्रकार की सहायता वह नही लेना चाहता। उसको जो काम करना पडता है, उसमे जो मेहनत करनी पडती है, उससे वह बीमार हो जायगा। उसको आप ले जाइए। वहा चीजें सस्ती है। उसको जरा दूध-दही आदि अच्छा खाना मिल सके, इसका प्रबन्ध कर दीजिए तो वह बचेगा, नही तो मर जायगा। लडका बहुत भला मालूम होता है। पोद्दारजी उसको ले गये। वहा उसने

काम किया, तो वह एक खास योग्य आदमी साबित होने लगा। उसकी आवश्यकता केवल खाने-भर की थी। पाच-छ महीने मे वह काफी तदुरुस्त हो गया। शरीर थोडा भर आया था। वहा की आबोहवा और खाना, पीना, रहना सबका उसके शरीर पर काफी असर पडा। काम तो वह इतना करता था कि उसके जैसा काम करनेवाला वहा कोई दूसरा आदमी ही न था। एक वर्ष मे वहा का सब काम जान गया और एक-प्रकार से व्यवस्थापक का काम करने लगा। उससे कई बार कहा कि तुम रुपये ले लो, जो चाहे वह ले लो। कम-से-कम सवा सौ रुपया महीना तो उसे मिलना ही चाहिए था, पर वह पाच-दस रुपया भी न लेता। जरूरत पडने पर दो-चार लेता, वह भी कभी ही। पोद्दारजी उसपर फिदा रहते। एक-दो वर्ष ऐसे ही बीते होगे। एक दिन उसने पोद्दारजी से कहा, "मुझे दोसौ रुपये चाहिए।" पोद्दारजी ने कहा, "जितने चाहिए, ले लो, पर क्या करोगे ?" उसने कहा, "घूमने जाऊगा।" उन्होने रुपये दे दिये। वह चला गया। लौटा नही, न पत्र आदि आया। चिन्ता होने लगी हम सबको, पर क्या करते! महीना-दो महीना निकल गया।

मैं और पोद्दारजी शुद्ध खादी भडार में बैठे बात कर रहे थे। एक महाराष्ट्री सज्जन आये। उमर पचास के करीब होगी, काली टोपी, कमीज, कोट, ऊची-सी धोती, नाटे-से थे वह। कुरसी पर बैठाया। बडे निराश-से, थके-से मालम हो रहे थे। दो-चार मिनट बाद उन्होने अपनी पाकेट से एक फोटो निकाली और कापते हुए हाथो से भर्राई हुई आवाज मे हमे देते हुए बोले, "यह लडका आपके यहा. ." हमने फोटो को ध्यान से देखा। पोद्दारजी ने मुझसे कहा, "यह तो दत्तात्रेय की फोटो मालूम होती है।"

उन सज्जन ने कहा, "यह लडका मेरा भानजा है। इसके पिता हैदराबाद मे एक बडे पद पर काम करते है। लडके ने मैट्रिक की परीक्षा दी। उसके बाद वह घर से चला गया, कहा गया, पता नही। इन दो वर्षों मे हमे जहा भी कुछ पता लगा वहा-वहा गये। हजारों रुपये खर्च किये, पर पता नही लगा। इसके माता-पिता रात-दिन इस दुख मे घुले जा रहे है।

उस लडके की वृत्ति और स्वभाव इतना अच्छा था कि हम उसको भूल नही पा रहे हैं। महाराष्ट्री सज्जन ने कहा, "आपकी दूकान गाधीजी की दूकान है। वह लडका ऐसी जगह आ सकता है, इसलिए हम आपके पास आये हैं।"

हमलोग क्या कहते! उस आदमी को कुछ कहते वनता नही था। फोटो सचमुच उस लडके की थी। हमें कहना पडा कि वह हमारे पास दो वर्ष तक रहा, पर दो महीने हुए, हमसे छुट्टी मागकर सैर करने के वहाने चला गया और नही आया, न कोई पता वताया, न कोई पत्र लिखा। हमारा मन भी उसे खोज रहा है।

उस अधेड आदमी ने सिर पीट लिया और रोने लगा।

उस दत्तात्रेय का हमको आजतक पता नही, पर न मालूम उसकी कितनी वार याद आती है। वात वहुत छोटी होते हुए भी इतनी गहरी और मन की गहराई को छूती है कि आज भी मेरा मन उसे खोज ही रहा है।

४ : बटोही

सुवह मैं प्रतिदिन ढकुरिया लेकर घूमने जाता हूं। दो-तीन दिन से वहा एक बूढे आदमी को देख रहा हू। इस आदमी को देखकर मन मे कई तरह के विचार चलते रहे। सोचा, क्या सिद्धार्थ ने किसी ऐसी ही क्षीणकाय जरा-पीडित देह के दर्शन करके अपने सवेदनशील मानस मे भीषण विकलता का अनुभव किया था। मेरे एक मित्र है, प्राय हम दोनो एक साथ घूमने है। मैंने उनसे कहा, "भाईसाहव, इस आदमी से वाते करने को जी चाहता है। चलिये, वाते करे। आप ऐसे दुखी लोगो से अच्छी वाते कर सकते हैं। चलिये, आप ही शुरू कीजियेगा। मेरे मित्र वहुत पर-दुखकातर हैं। वह गरीव और दुखी के हृदय मे प्रवेश

रह ।

नजदीक से देखा उस मानव-तनधारी को। उसकी कमर इतनी झुक चुकी है कि वह आकाश को नही देख सकता और अपने हाथो को लटकाकर नही चल सकता, क्योकि हाथो को लटका दे, तो वह जमीन से थोडे ही ऊचे रह जायगे। इसलिए बरबस हाथो को कमर के पीछे लगाकर वह चलता है और शायद ऐसा करने से उसे कुछ जोर भी मिल रहा हो। कुदाली को पीठ पर बाये हाथो के सहारे लिये, फटी मैली धोती पहने, चिथडे-जैसी पगडी सिर पर लपेटे, झुरियो से भरा मुख, छोटी-छोटी आखे, जो बुढापे के कारण अन्दर धस चुकी है, वह अपनी टुकुर-टुकुर चाल मे चला जा रहा था। वह किसी ओर नही देखता। *हम दोनो थोडी दूर तक उसके साथ-साथ चले। अपनी समाधि मे स्थिर* किसी योगी की तरह वह अपने ध्यान मे चलता रहा। अब सवाल यह था कि उसे क्या कहकर सम्बोधन करें? बूढा कहना अच्छा नहीं लगता। कुछ सूझा नहीं उसे सम्बोधन करने को। अन्त मे ऐसे ही बात शुरू कर दी, "कहिये, कहा जा रहे है?"

वह हमारी तरफ बिना देखे ही बोला, "काम पर जा रहा हू।"

"रहते कहा है?"

"बालीगज स्टेशन के पास।"

"काम करने कहा जा रहे है?"

"टालीगज ट्राम-डिपो की लाइन मे।"

मैंने मन मे सोचा, टालीगज और बालीगज स्टेशन का तो काफी फासला है। कितनी देर मे पहुचेगा यह वहा और उसकी यह अवस्था इतनी दूर चलने लायक है? पर मित्र ने दूसरा प्रश्न कर डाला, उनसे, जिनसे मेरा ध्यान भी उस तरफ फिर गया।

"क्या पाते हो काम करने का?"

"पता नही, शायद एक रुपया रोज मिलेगा।"

"तो क्या यह काम अभी करने लगे हो?"

"हा, बाबूजी, रोज-रोज काम थोडे ही मिलता है।"

मित्र ने दूसरा प्रश्न किया, "तुम्हारी उमर कितनी है?"

"बाबूजी, मालूम नही।"

मैंने कहा, "सत्तर के ऊपर होगी।"

"हम तो जानत नाही।"

मित्र ने कहा, "कुडी जानते हो।"

"जानत हैं।"

"दो-तीन कुडी होगी क्या ?"

- "इससे तो ज्यादा होत।"

मैंने कहा, "देश कहा है ?"

"समझता नही, बाबू।"

मित्र ने पूछा, "कभी मुलक गये थे ?"

"हा, गया था। पिछले वर्ष गया था।"

"वहा तुम्हारे कौन हैं ?"

"सवन है।"

मित्र ने कहा, "लडके है तो, स्त्री है तो, तुम इस उमर मे यहा क्यो रहते हो ?"

"क्या करु, पेट तो भरना ही पडेगा।"

"क्या वे लोग तुम्हे खाना नही देते ?"

"बाबू, खेती-बारी है नही उनकी। फिर कौन किसीको देता है। देनेवाला सबको देता है।"

उसके यह कहने मे कि कौन किसीको देता है, उसकी सारी व्यथा व्यक्त हो रही थी। यह उमर, यह शरीर और इतनी मेहनत क्या कोई सहज ही और योही कर सकता है ? पर वह अपने घर के लोगो से, समाज-व्यवस्था से त्रस्त है। उसे बाध्य होना पडता है इतनी दूर चलकर ट्राम डिपो मे कुदाली चलाने पर। थकावट के कारण जरा सुस्ताने की कोशिश करता है, तो सरदार की झडकिया खानी पडती है और कभी मजदूरी काट लेने का भय दिखाया जाता है।

उसने कहा, "न बाबू, पेट तो भरना ही पडेगा। इसीलिए इस गढे को भरने के लिए मान-अपमान, दु ख-सुख सभी कुछ सहना पडता है।" उससे अलग होते समय मित्र ने पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है ?

इसने कहा, "बटोही।" मैंने कहा, "सचमुच यह बटोही ही है।" मैं घर आ गया और नाश्ता करने लगा, पर मस्तिष्क मे उस बूढे की वह शक्ल घूम रही थी, उसकी व्यथाभरी आवाज कानो मे गूज रही थी। मैं सोचने लगा, यह आदमी क्या हमारे देश की हालत का प्रती नही? जिस देश मे स्त्रिया पेट के लिए तन बेचे, बच्चे बिलख-बिलखकर मर जाय और इस तरह का आदमी कुदाली चलाने जैसा कठोर धन्धा करने पर बाध्य हो, वहा मानवता का विकास कैसे हो सकता है!

५ : दो दृश्य

कल रात को यहा खूब वर्षा हुई। गगा के किनारे की जमीन कीचड से भर गई, इसीलिए मुझे अपने प्रात काल के वायु-सेवन के लिए सदर रास्ते पर चलना पडा। नाना प्रकार के विचारो मे निमग्न मैं करीब दो मील निकल गया। मैं अपने पथ पर अकेला था और मेरी चाल तेज थी। एकाएक एक आवाज आई और मेरे पैर रुक गये। सामने एक आदमी खडा था और उसके सामने भीगे हुए कम्बल का एक पुलन्दा। वह आदमी उस पुलिन्दे की तरफ मुह किये कुछ बातें कर रहा था। एक निर्जीव चीज से बातचीत! मैं उस आदमी के नजदीक गया और मैंने जो कुछ देखा, उसकी याद आजतक मेरे रोम-रोम को कपा रही है। मैं उसे भूलने की कोशिश कर रहा हूं, किन्तु उसकी तस्वीर इतनी ताकतवर है कि मेरी दुर्बल आखो का पानी बार-बार कोशिश करने पर भी उसे मिटा नही पाता।

मैंने देखा, उस कम्बल के पुलिन्दे मे जान थी। वह कम्बल का पुलिन्दा एक मनुष्य था, मेरे ही समान चेतनामय। वह गरीब था। किसीने दया कर वह सूती कम्बल दे दिया था। वही उसका एकमात्र कपडा था। दुर्भाग्य से उसमे आग लग गई थी! उस कम्बल मे कई छेद हो गये थे और उन छेदो मे से आग की लपटें उसके शरीर को भी

जला गई थी। जलने पर भी वह उसी कम्बल को लपेटे शरीर के दर्द, वर्षा की बौछारे और रात की ठड को सहता रहा। वह एक वृक्ष के नीचे पडा था। शायद वह वृक्ष को अपनी रक्षा का साधन समझे हुए था। उसका चेहरा देखने से मालूम होता था कि वह कराहने की कोशिश कर रहा है, किन्तु उसके मुह से आवाज नही निकल पाती थी। मैने उसके पास खडे हुए आदमी से उसके जलने का कारण पूछा तो मालूम हुआ कि उस अभागे ने कपडे की कमी के कारण आग मे अपनी सर्दी मिटाने की कोशिश की थी और इसीलिए वह जल गया है। अस्पताल मे उसके लिए जगह नही थी। दुनिया मे उसका कोई सगा-सम्बन्धी नहीं था। मैने जब जले हुए घावो को दिखाने के लिए कहा, तो उस आदमी ने जरा-सा वह कम्बल सरका दिया, और मैने देखा मनुष्य के शरीर का वह भयकर रूप, जिसकी याद ने मेरे प्राणो मे एक घाव बना दिया है। उस आदमी ने बताया था कि उस अभागे का कोई नही है। मुझे एकाएक ईश्वर की याद आ गई, क्योकि जब दूसरा नही होता, तब भगवान की याद आ ही जाती है। मेरे मन ने सवाल किया, "क्या जगत-पिता कहलानेवाला परमात्मा भी उस अभागे का कोई नही है? क्या उस ईश्वर की सृष्टि मे ऐसे भी जीव है, जो वस्त्रहीन, अन्न-हीन, भूखे-प्यासे, बीमार और दर्द से कातर होकर यह महसूस करते है कि उनका कोई नही है? और वह भी उस विशाल सम्पत्ति के केन्द्र कलकत्ता से केवल ३५ मील की दूरी पर! मन की एक अजीब हालत हो गई। उस ग्रामीण भाई से सलाह की कि उसके लिए क्या किया जा सकता है। वह इस देहात का एक भयकर दृश्य था। मै आगे बढा। अचानक मेरी नजर पडी दो उछलते-कूदते बछडो पर। उन्हे ससार मे आये पन्द्रह-बीस ही दिन हुए थे। रग बिलकुल सफेद था। मस्तक कुछ-कुछ लाल और पीला था। चारो तरफ वे दौड रहे थे। वे खुद बहुत सुन्दर थे। ससार भी उन्हे बहुत सुन्दर मालूम होता था, इसीलिए वे खुश भी बहुत थे। वे भी राहगीरो को आकर्षित करते थे। उस अभागे गरीब ने भी आकर्षित किया था। पर दोनो के ससार मे कितना अतर था!